श्री दि० जैन स्वाध्याय मंदिर ट्रस्ट, सोनगढ़ (सौराष्ट्र) का मुखपत्र
कार्यालय : टोडरमल स्मारक भवन, ए-४, बापूनगर, जयपुर ३०२००४
सम्पादक : डॉ० हुकमचन्द भारिल्ल

आत्मधर्म [४०९]

[हिन्दी, गुजराती, मराठी, तामिल तथा कन्नड़ — इन पाँच भाषाओं में प्रकाशित
जैन समाज का सर्वाधिक बिक्रीवाला आध्यात्मिक मासिक]

संपादक :
डॉ० हुकमचन्द भारिल्ल
प्रबंध संपादक :
अखिल बंसल
कार्यालय :
श्री टोडरमल स्मारक भवन
ए-४, बापूनगर, जयपुर ३०२००४
प्रकाशक :
श्री दिगम्बर जैन स्वाध्यायमंदिर ट्रस्ट
सोनगढ़ (भावनगर-गुजरात)
शुल्क :
आजीवन : १०१ रुपये
वार्षिक : ६ रुपये
एक प्रति : ५० पैसे
मुद्रक :
सोहनलाल जैन
जयपुर प्रिण्टर्स, जयपुर

कहाँ / क्या

१ सुन ज्ञानी प्राणी०...
२ आसन्न भव्यजीव को...
३ संपादकीय : क्रमबद्धपर्याय
४ क्या जीव और देह एक है ?
[समयसार प्रवचन]
५ कैसा है यह आत्मा ?
[नियमसार प्रवचन]
६ द्रव्यसंग्रह प्रवचन
७ ज्ञान-गोष्ठी
८ समाचार दर्शन
९ पाठकों के पत्र

आवरण :

परमपूज्य भगवान कुन्दकुन्द और उनके समयसाररूपी सूर्य की किरणों से आलोकित हो पू० कानजी स्वामी का हृदय-कमल खिल उठा।

आत्मधर्म

शाश्वत सुख का, आत्म शान्ति का, प्रगट करे जो मर्म।
समयसार का सार, सभी को प्रिय, यह आतम धर्म॥

वर्ष : ३५ [४०९] अंक : १

सुन ज्ञानी प्राणी, श्रीगुरु सीख सयानी॥टेक॥

नर भव पाय विषय मति सेवो, ये दुरगति अगवानी॥
सुन ज्ञानी प्राणी० ॥१॥

यह भव, कुल, यह तेरी महिमा, फिर समझी जिनवाणी।
इस अवसर में यह चपलाइ, कौन समझ उर आनी।
सुन ज्ञानी प्राणी० ॥२॥

चंदन-काठ, कनक के भाजन, भरि गंगा का पानी।
तिल-खल रांधत मंदमती जो, तुझ क्या रीस विरानी॥
सुन ज्ञानी प्राणी० ॥३॥

'भूधर' जो कथनी सो करनी, यह बुधि है सुखदानी।
ज्यों मशालची आप न देखे, सो मति करै कहानी॥
सुन ज्ञानी प्राणी० ॥४॥

बीस वर्ष पहले

[इस स्तंभ में आज से लगभग बीस वर्ष पहले आत्मधर्म (हिंदी)में प्रकाशित महत्त्वपूर्ण अंशों को प्रकाशित किया जाता है।]

आसन्न भव्यजीव को क्या उपादेय है?

अत्यल्प काल में जिसे संसार परिभ्रमण से मुक्त होना है, ऐसे अति आसन्न भव्यजीव को निज परमात्मा के अतिरिक्त अन्य कुछ भी उपादेय नहीं है। जिसमें कर्म की कोई विवक्षा नहीं है—ऐसा जो अपना शुद्ध परमात्मतत्त्व है, उसका आश्रय करने से सम्यग्दर्शन होता है। उसी का आश्रय करने से सम्यक्ज्ञान और सम्यक्चारित्र होकर अल्प काल में मुक्ति होती है। इसलिए मोक्षाभिलाषी ऐसे अतिनिकट भव्यजीव को अपने शुद्धात्मतत्त्व का ही आश्रय करने योग्य है; उससे भिन्न अन्य कोई आश्रय करने योग्य नहीं है।

शुद्ध सहज परमपारिणामिकभावरूप ऐसे अपने शुद्ध आत्मतत्त्व को उपादेय करने से ही मोक्ष होता है; ऐसा नियम है। इसलिए अंतर्मुख होकर जो जीव अपने ऐसे शुद्ध आत्मा को उपादेयरूप से अंगीकार करता है वही अति निकट भव्य है, वही अल्पकाल में मोक्ष प्राप्त करता है।

जो जीव ऐसे शुद्धात्मा को उपादेय नहीं करता तथा बहिर्मुख रागादि भावों को उपादेय करता है, वह मूढ़जीव दूर भव्य है; उसके लिए मोक्ष बहुत दूर है। इसलिए हे आसन्न भव्यजीव! हे मोक्षार्थी जीव!! तू अपने शुद्ध आत्मतत्त्व को उपादेय कर—वही उपादेय है ऐसी श्रद्धा कर। उसी को उपादेयरूप से जान और उसी को उपादेय करके उसमें स्थिर हो। ऐसा करने से अल्पकाल में तेरी मुक्ति होगी।

— आत्मधर्म, वर्ष १४, अंक १६८, अप्रेल १९५९, कवर पृष्ठ २

सम्पादकीय

क्रमबद्धपर्याय | एक अनुशीलन

[गतांक से आगे]

'क्रमबद्धपर्याय' में यदि कुछ लोगों को नियतवाद का एकान्त नजर आता है तो कतिपय मनीषी इसे एकांत भाग्यवादी दृष्टिकोण मानते हैं। उनकी दृष्टि में नियतिवाद, क्रमबद्धपर्याय और दैववाद में कोई अंतर नहीं है क्योंकि जो होना है, सो होगा—ऐसा विचारना पुरुषार्थहीन बनाता है। उनके अनुसार कार्तिकेयानुप्रेक्षा की गाथा ३२१ से ३२३ तक का कथन सार्वभौमिक सत्य नहीं है।

इस संदर्भ में हम सिद्धांताचार्य पंडित कैलाशचंदजी वाराणसी के विचार जो कि उन्होंने कार्तिकेयानुप्रेक्षा की उक्त गाथाओं के भावार्थ में ही व्यक्त किये हैं, उद्धृत करना चाहते हैं:—

'सम्यग्दृष्टि यह जानता है कि प्रत्येक पर्याय का द्रव्य, क्षेत्र, काल और भाव नियत है। जिस समय, जिस क्षेत्र में, जिस वस्तु की जो पर्याय होनेवाली है, वही होती है—उसे कोई नहीं टाल सकता। सर्वज्ञदेव सब द्रव्य, क्षेत्र, काल और भाव की अवस्थाओं को जानते हैं। किंतु उनके जान लेने से प्रत्येक पर्याय का द्रव्य, क्षेत्र, काल और भाव नियत नहीं हुआ; बल्कि नियत होने से ही उन्होंने उसरूप में जाना है। जैसे—सर्वज्ञदेव ने हमें बतलाया है कि प्रत्येक द्रव्य में प्रति समय पूर्वपर्याय नष्ट होती है और उत्तरपर्याय उत्पन्न होती है। अत: पूर्वपर्याय उत्तरपर्याय का उपादान कारण है और उत्तरपर्याय पूर्वपर्याय का कार्य है। इसलिए पूर्वपर्याय से जो चाहें उत्तरपर्याय उत्पन्न नहीं हो सकती, किंतु नियत उत्तरपर्याय ही उत्पन्न होती है। यदि ऐसा न माना जाएगा तो मिट्टी के पिण्ड में स्थास कोस पर्याय के बिना भी घट पर्याय बन जायेगी। अत: यह मानना पड़ता है कि प्रत्येक पर्याय का द्रव्य, क्षेत्र, काल और भाव नियत है।

कुछ लोग इसे नियतिवाद समझकर उसके भय से प्रत्येक पर्याय का द्रव्य, क्षेत्र और भाव तो नियत मानते हैं, किंतु काल को नियत नहीं मानते। उनका कहना है कि पर्याय का द्रव्य, क्षेत्र और भाव तो नियत है, किंतु काल नियत नहीं है; काल को नियत मानने से पौरुष व्यर्थ हो जायेगा।

किंतु उनका उक्त कथन सिद्धांत विरुद्ध है; क्योंकि द्रव्य, क्षेत्र और भाव नियत होते हुए काल अनियत नहीं हो सकता। यदि काल को अनियत माना जायेगा तो काललब्धि कोई चीज़ ही नहीं रहेगी। फिर तो संसार परिभ्रमण का काल अर्द्धपुद्गल परावर्तन से अधिक शेष रहने पर भी सम्यक्त्व प्राप्त हो जायेगा और बिना उस काल को पूरा किये ही मुक्ति हो जायेगी। किंतु यह सब बातें आगमविरुद्ध हैं। अत: काल को भी मानना ही पड़ता है।

रही पौरुष की व्यर्थता की आशंका, सो समय से पहले किसी काम को पूरा कर लेने से ही पौरुष की सार्थकता नहीं होती। किंतु समय पर काम हो जाना ही पौरुष की सार्थकता का सूचक है। उदाहरण के लिये किसान योग्य समय पर गेहूँ बोता है और खूब श्रमपूर्वक खेती करता है। तभी समय पर पक कर गेहूँ तैयार होता है। तो क्या किसान का पौरुष व्यर्थ कहलायेगा? यदि वह पौरुष न करता तो समय पर उसकी खेती पककर तैयार न होती, अत: काल की नियतता में पौरुष के व्यर्थ होने की आशंका निर्मूल है।

अत: जिस समय, जिस द्रव्य की, जो पर्याय होनी है, वह अवश्य होगी। ऐसा जानकर सम्यग्दृष्टि संपत्ति में हर्ष और विपत्ति में विषाद नहीं करता, और न संपत्ति की प्राप्ति तथा विपत्ति को दूर करने के लिये देवी-देवताओं के आगे गिड़गिड़ाता फिरता है।''[१]

उक्त कथन में कार्तिकेयानुप्रेक्षा की उक्त गाथाओं की सार्वभौमिकता पर ही बल दिया गया है और पौरुष की सार्थकता भी सिद्ध की गयी है। सम्यग्दृष्टि ज्ञानी जीव की परमुखापेक्षिता एवं दीनता इसी सार्वभौमिक सत्य के आधार पर समाप्त होती है कि एक द्रव्य दूसरे का भला-बुरा नहीं कर सकता तथा जिस द्रव्य की, जो पर्याय, जिस काल में, जिस विधान से, जिस निमित्तपूर्वक, जैसी होनी है; उस द्रव्य की, वह पर्याय, उसी काल में, उसी विधान से, उसी निमित्तपूर्वक, वैसी ही होगी; उसे इंद्र तो क्या जिनेन्द्र भी नहीं पलट सकते हैं; तो फिर व्यंतरादि साधारण देवी-देवता की तो क्या विसात है?

जरा विचार तो कीजिए कि कार्तिकेयानुप्रेक्षा का उक्त कथन गृहीतमिथ्यात्व के निषेध के लिये किया गया है, उसे सर्वभौम नहीं मान लेना चाहिये—इसका क्या अर्थ हो सकता है? क्या यह बात सत्य नहीं है, मात्र गृहीतमिथ्यात्व को छुड़ाने के लिये यों ही कह दी गयी है? क्या

---

१. कार्तिकेयानुप्रेक्षा : राजचंद्र जैनशास्त्र माला, पृष्ठ २२८

असत्य के आश्रय से गृहीतमिथ्यात्व छूट सकता है ? क्या समय से पूर्व कोई कार्य संपन्न किया जा सकता है ? क्या समय के पूर्व कार्य-संपन्नता में ही पुरुषार्थ है ? शेष कार्य क्या बिना पुरुषार्थ के ही संपन्न हो जाते हैं ?—ये कुछ प्रश्न हैं जो कि उक्त सत्य को सार्वभौमिक एवं सार्वकालिक न मानने पर उत्पन्न होते हैं। फिर सर्वज्ञता का प्रश्न भी खड़ा हुआ ही है।

अब रहा एक पुरुषार्थहीनता का प्रश्न ? उसके संदर्भ में हमारा कहना यह है कि क्रमबद्धपर्याय की बात सर्वत्र पुरुषार्थ को आगे रखकर ही कही गयी है, उसकी उपेक्षा करके नहीं।

होनहार की चर्चा करते हुए भैया भगवतीदासजी भी पुरुषार्थ की प्रेरणा देना नहीं भूलें। उनकी दृष्टि में सच्ची होनहार अर्थात् क्रमबद्धपर्याय पुरुषार्थनाशक नहीं, अपितु पुरुषार्थ प्रेरक है। जिस पद में वे यह लिखते हैं:—

'जो जो देखी वीतराग ने, सो सो होसी वीरा रे।
अनहौनी होसी नहिं क्यों ही, काहे होत अधीरा रे॥'

उसी पद में आगे चलकर पुरुषार्थ की प्रेरणा देते हुए लिखते हैं:—

'तू सम्हारि पौरुष बल अपनो, सुख अनंत तो तीरा रे।'

यद्यपि कार्य की उत्पत्ति में अनेक कारण माने गये हैं, जिन्हें पंच समवाय के नाम से भी अभिहित किया जाता है; तथापि उन सब में पुरुषार्थ को विशिष्ट स्थान प्राप्त है, क्योंकि प्रयत्न उसी के संदर्भ में संभव है—भवितव्य (होनहार), काललब्धि आदि में संभव नहीं है। क्रमबद्धपर्याय अर्थात् सम्यक्-नियति मानने में जगत को पुरुषार्थ की अप्रासंगिकता दिखायी देती है, जबकि सम्यक्-नियति में अन्य कारणों की उपेक्षा न होने से इसप्रकार की कोई बात नहीं है। इसी बात को उपर्युक्त कथन में स्पष्ट किया गया है।

आचार्यकल्प पंडित टोडरमलजी ने मुक्तिमार्ग के संदर्भ में इस विषय को उठाकर बहुत अच्छी मीमांसा प्रस्तुत की है। उसका कुछ अंश दृष्टव्य है, जो कि इसप्रकार है:—

"यहाँ प्रश्न है कि मोक्ष का उपाय काललब्धि आने पर भवितव्यानुसार बनता है, या मोह आदि के उपशमादि होने पर बनता है, या अपने पुरुषार्थ से उद्यम करने पर बनता है—सो कहो। यदि प्रथम दोनों कारण मिलने पर बनता है तो हमें उपदेश किसलिए देते हो ? और

पुरुषार्थ से बनता है तो उपदेश सब सुनते हैं, उनमें कोई उपाय कर सकता है, कोई नहीं कर सकता; सो कारण क्या ?

समाधान:—एक कार्य होने में अनेक कारण मिलते हैं। सो मोक्ष का उपाय बनता है वहाँ तो पूर्वोक्त तीनों ही कारण मिलते हैं, और नहीं बनता वहाँ तीनों ही कारण नहीं मिलते। पूर्वोक्त तीन कारण कहे उनमें काललब्धि व होनहार तो कोई वस्तु नहीं है; जिस काल में कार्य बनता है वही काललब्धि, और जो कार्य हुआ वही होनहार। तथा जो कर्म के उपशमादिक हैं, वह पुद्गल की शक्ति है, उसका आत्मा कर्त्ता-हर्त्ता नहीं है। तथा पुरुषार्थ से उद्यम करते हैं सो यह आत्मा का कार्य है; इसलिए आत्मा को पुरुषार्थ से उद्यम करने का उपदेश देते हैं।

वहाँ यह आत्मा जिसकारण से कार्यसिद्धि अवश्य हो उस कारणरूप उद्यम करे, वहाँ तो अन्य कारण मिलते ही मिलते हैं, और कार्य की भी सिद्धि होती ही होती है तथा जिस कारण से कार्य की सिद्धि हो अथवा नहीं भी हो, उस कारणरूप उद्यम करे, वहाँ अन्य कारण मिलें तो कार्यसिद्धि होती है, न मिले तो सिद्धि नहीं होती।

सो जिनमत में जो मोक्ष का उपाय कहा है, इससे मोक्ष होता ही होता है। इसलिए जो जीव पुरुषार्थ से जिनेश्वर के उपदेशानुसार मोक्ष का उपाय करता है, उसके काललब्धि व होनहार भी हुए और कर्म के उपशमादि हुए हैं तो वह ऐसा उपाय करता है। इसलिये जो पुरुषार्थ से मोक्ष का उपाय करता है, उसको सर्व कारण मिलते हैं और उसको अवश्य मोक्ष की प्राप्ति होती है—ऐसा निश्चय करना। तथा जो जीव पुरुषार्थ से मोक्ष का उपाय नहीं करता उसके काललब्धि व होनहार भी नहीं और कर्म के उपशमादि नहीं हुए हैं, तो यह उपाय नहीं करता। इसलिये जो पुरुषार्थ से मोक्ष का उपाय नहीं करता उसको कोई कारण नहीं मिलते और उसको मोक्ष की प्राप्ति नहीं होती—ऐसा निश्चय करना।''[१]

उक्त कथन में पंडित टोडरमलजी ने कार्य की निष्पन्नता में पुरुषार्थ को प्रधान रखकर काललब्धि आदि अन्य कारणों की भी अनिवार्य उपस्थिति बनायी है। वस्तुतः पाँचों समवायों का समवाय ही कार्य का उत्पादक है। यह कहना कोरी कल्पना ही है कि पाँचों समवायों में से यदि एक भी नहीं मिला तो कार्य नहीं होगा, क्योंकि ऐसा संभव ही नहीं है कि कार्य होना हो और कोई समवाय न मिले, जब कार्य होना होता है तो सभी समवाय होते ही होते हैं। पुरुषार्थ

१. मोक्षमार्गप्रकाशक, पृष्ठ ३०९

को मुख्य करके यह बात पंडित टोडरमलजी ने बहुत ही स्पष्ट लिखी है। पुरुषार्थ भी अन्य समवायों के अनुसार ही होता है। पंच समवायों में कोई परस्पर संघर्ष नहीं है, अपितु अद्‌भुत सुमेल है। अत: यह कहना कि यदि होनहार न हुई या काललब्धि न पकी तो पुरुषार्थ से क्या होता है? या निमित्त नहीं मिला तो होनहार क्या करेगी या पुरुषार्थ क्या काम आयेगा? आदि—मानसिक व्यायाम के अतिरिक्त कुछ मायने नहीं रखता।

वैसे तो पुरुषार्थ के बिना कोई भी कार्य संपन्न नहीं होता। सर्वत्र ही अन्य समवाय सापेक्ष पुरुषार्थ का साम्राज्य है। मुक्तिमार्गरूपी कार्य की उत्पत्ति, स्थिति, वृद्धि और पूर्णता में भी काललब्धि आदि अन्य समवायों के साथ-साथ पुरुषार्थ का महत्त्वपूर्ण स्थान है, फिर भी मुक्ति के मार्ग के संदर्भ में पुरुषार्थ की व्याख्या जगत जिसे पुरुषार्थ समझता है, उससे कुछ भिन्न ही है।

पुरुषार्थसिद्धयुपाय की भाषा टीका में छन्द ९ के भावार्थ में पंडित टोडरमलजी ने पुरुष की व्याख्या इसप्रकार की है:—

''पुरु=उत्तम चेतना गुण में, सेते=स्वामी होकर प्रवर्तन करे—उसको पुरुष कहते हैं। ज्ञानदर्शन चेतना के नाथ को पुरुष कहते हैं।''

अर्थ अर्थात् प्रयोजन—इसप्रकार उत्तम चेतना गुण का स्वामी होकर उसमें ही प्रवर्तन करना है प्रयोजन जिसका, उसे पुरुषार्थ कहते हैं। दूसरे शब्दों में मुक्ति के मार्ग में आत्मानुभवन की प्राप्ति का प्रयास ही पुरुषार्थ है।

क्रमबद्धपर्याय की श्रद्धा की स्थिति में तो उक्त पुरुषार्थ विशेषकर जागृत होता है, क्योंकि अनादिकाल से जगत के परिणमन को अपनी इच्छानुकूल करने की आकुलता से व्याकुल प्राणी जब यह अनुभव करता है कि जगत के परिणमन में मैं कुछ भी फेरफार नहीं कर सकता तो उसका उपयोग सहज ही जगत से हटकर आत्मसन्मुख होता है। और जब यह श्रद्धा बनती है कि मैं अपनी क्रमनियमित पर्यायों में भी कोई फेरफार नहीं कर सकता तो पर्याय पर से भी दृष्टि हट जाती है और स्वस्वभाव की ओर ढलती है।

दृष्टि का स्वभाव की ओर ढलना ही मुक्ति के मार्ग में अनंत पुरुषार्थ है। क्रमबद्धपर्याय की श्रद्धा करनेवाले को उक्त श्रद्धा के काल में आत्मोन्मुखी अनंत पुरुषार्थ होने का और सम्यग्दर्शन प्रकट होने का क्रम भी सहज होता है।

कर्तृत्व के अहंकार से ग्रस्त इस जगत को पर में या पर्याय में कुछ फेरफार करने में ही पुरुषार्थ दिखायी देता है किंतु पर और पर्याय संबंधी विकल्पों से विराम लेकर स्व में स्थिर हो जाने में पुरुषार्थ नहीं दिखता। सर्वज्ञभगवान पर में व अपनी पर्याय में भी कुछ भी फेरफार नहीं करते, तो क्या वे पुरुषार्थहीन हो गये ? क्या उनके धर्म व मोक्ष पुरुषार्थ नहीं हैं ?

उनके वीर्यगुण का पूर्ण विकास हो चुका है, फिर भी क्या वे अनंत वीर्य के धनी अर्थात् पूर्ण पुरुषार्थी नहीं हैं ? पर में व पर्याय में कुछ भी फेरफार किये बिना ही जब वे अनंत पुरुषार्थी हो सकते हैं तो फिर हम क्यों नहीं ? ये कुछ प्रश्न हैं उनके सामने, जिन्हें क्रमबद्धपर्याय मानने में पुरुषार्थ उड़ता नजर आता है।

उक्त संदर्भ में स्वामीजी के विचार भी दृष्टव्य हैं :—

''प्रश्न:—जबकि सभी क्रमबद्ध है और उसमें जीव कोई भी परिवर्तन नहीं कर सकता तो फिर जीव में पुरुषार्थ कहाँ रहा ?

उत्तर:—सब कुछ क्रमबद्ध है—इस निर्णय में ही जीव का अनंत पुरुषार्थ समाविष्ट है, किंतु उसमें कोई परिवर्तन करना आत्मा के पुरुषार्थ का कार्य नहीं है। भगवान जगत का सबकुछ मात्र जानते ही हैं, किंतु वे भी कोई परिवर्तन नहीं कर सकते, तब क्या इससे भगवान का पुरुषार्थ परिमित हो गया ? नहीं, नहीं; भगवान का अनंत अपरिमित पुरुषार्थ अपने ज्ञान में समाविष्ट है। भगवान का पुरुषार्थ निज में है, पर में नहीं। पुरुषार्थ जीवद्रव्य की पर्याय है, इसलिए उसका कार्य जीव की पर्याय में होता है; किंतु जीव के पुरुषार्थ का कार्य पर में नहीं होता।

जो यह मानता है कि सम्यग्दर्शन और केवलज्ञानदशा आत्मा के पुरुषार्थ के बिना होती है, वह मिथ्यादृष्टि है। ज्ञानी प्रतिक्षण स्वभाव की पूर्णता के पुरुषार्थ की भावना करता है। अहो! जिनका पूर्ण ज्ञायकस्वभाव प्रगट हो गया है, वे केवलज्ञानी हैं; उनके ज्ञान में सब-कुछ एक ही साथ ज्ञात होता है। ऐसी प्रतीति करने पर स्वयं भी निज दृष्टि से देखनेवाला ही रहा; ज्ञान के अतिरिक्त पर का कर्तृत्व अथवा रागादिक सब-कुछ अभिप्राय में से दूर हो गया। ऐसी द्रव्यदृष्टि के बल से, ज्ञान की पूर्णता की भावना से, वस्तुस्वरूप का चिंतवन करता है।

यह भावना ज्ञानी की है, अज्ञानी मिथ्यादृष्टि की नहीं है; क्योंकि मिथ्यादृष्टि जीव पर का

कर्तृत्व मानता है और कर्तृत्व की मान्यतावाला जीव ज्ञातृत्व की यथार्थ भावना नहीं कर सकता, क्योंकि कर्तृत्व और ज्ञातृत्व का परस्पर विरोध है।

सर्वज्ञ भगवान ने अपने केवलज्ञान में जैसा देखा है, वही होता है। यदि हम उसमें कोई परिवर्तन नहीं कर सकते तो फिर उसमें पुरुषार्थ नहीं रहता—इसप्रकार जो मानते हैं, वे अज्ञानी हैं।

हे भाई! तू किसके ज्ञान से बात करता है? अपने ज्ञान से या दूसरे के ज्ञान से? यदि तू अपने ज्ञान से ही बात करता है तो फिर ज्ञान ने सर्वज्ञ का और सभी द्रव्यों की अवस्था का निर्णय कर लिया उस ज्ञान में स्वद्रव्य का निर्णय न हो—यह हो ही कैसे सकता है? स्वद्रव्य का निर्णय करनेवाले ज्ञान में अनन्त पुरुषार्थ है।

तूने अपने तर्क में कहा है कि 'सर्वज्ञ भगवान ने अपने केवलज्ञान में जैसा देखा हो वैसा होता है', तो वह मात्र बात करने के लिये कहा है—अथवा तुझे सर्वज्ञ के केवलज्ञान का निर्णय है। पहले तो यदि तुझे केवलज्ञान का निर्णय न हो तो सर्वप्रथम वह निर्णय कर और यदि तू सर्वज्ञ के निर्णयपूर्वक कहता हो तो सर्वज्ञ भगवान के केवलज्ञान के निर्णयवाले ज्ञान में अनन्त पुरुषार्थ आ ही जाता है। सर्वज्ञ का निर्णय करने में ज्ञान का अनंत वीर्य कार्य करता है, तथापि उससे इंकार करके तू कहता है कि क्रमबद्धपर्याय में पुरुषार्थ कहाँ रहा?

सच तो यह है कि तुझे पूर्ण केवलज्ञान के स्वरूप की ही श्रद्धा नहीं है, और केवलज्ञान को स्वीकार करने का अनंत पुरुषार्थ तुझमें प्रगट नहीं हुआ। केवलज्ञान को स्वीकार करने में अनंत पुरुषार्थ का अस्तित्व आ जाता है, तथापि यदि उसे स्वीकार नहीं करता तो कहना होगा कि तू मात्र बातें ही करता है किंतु तुझे सर्वज्ञ का निर्णय नहीं हुआ। यदि सर्वज्ञ का निर्णय हो तो पुरुषार्थ की और भव की शंका न रहे, यथार्थ निर्णय हो जाये और पुरुषार्थ न आये, यह हो ही नहीं सकता।''[१]

गहराई से विचार करें तो क्रमबद्धपर्याय के निर्णय में ही अनंत पुरुषार्थ आ जाता है। क्रमबद्धपर्याय का निर्णय स्वयं अनंत पुरुषार्थ का कार्य है, क्योंकि क्रमबद्धपर्याय के निर्णय में सर्वज्ञता का निर्णय समाहित है। जिसप्रकार सर्वज्ञता की प्रतीति-आस्था के बिना क्रमबद्ध-

---

१. ज्ञानस्वभाव-ज्ञेयस्वभाव, पृष्ठ २४६

पर्याय का निर्णय संभव नहीं है; उसीप्रकार क्रमबद्धपर्याय के सम्यक्निर्णय बिना सर्वज्ञता की भी सच्ची प्रतीति संभव नहीं है।

अब रही परकर्तृत्व के अहंकार की बात जिसे यह अज्ञानी जगत पुरुषार्थ माने बैठा है, सो वह पुरुषार्थ तो टूटना ही चाहिए क्योंकि वह सच्चा पुरुषार्थ ही नहीं है, वह तो नपुंसकता है। यदि क्रमबद्धपर्याय की श्रद्धा से परकर्तृत्व का अहंकार भी न टूटा तो समझना चाहिए कि 'क्रमबद्धपर्याय' उसकी समझ में आई ही नहीं है। 'क्रमबद्धपर्याय' की सच्ची श्रद्धा का फल तो कर्तृत्व का अहंकार टूटकर अंतरोन्मुखी सम्यक्पुरुषार्थ का जागृत होना ही है।

जिन लोगों को क्रमबद्धपर्याय की श्रद्धा में पुरुषार्थ उड़ता नजर आता है, वस्तुतः पुरुषार्थ का सही स्वरूप ही उनकी समझ में नहीं आया है। वे परकर्तृत्व और पर्याय के हेर-फेर को ही पुरुषार्थ माने बैठे हैं। उन्हें सर्वप्रथम पुरुषार्थ के सम्यक्स्वरूप का गंभीरता से विचार करना चाहिए। हमारा विश्वास है कि उनकी दृष्टि में पुरुषार्थ का सही स्वरूप स्पष्ट होते ही उनकी शंका-आशंका स्वतः समाप्त हो जावेगी; इसके बिना उक्त शंका का निवारण संभव नहीं है। अतः उनसे पुरुषार्थ के सही स्वरूप का गंभीरता से विचार करने का विनम्र अनुरोध है।

[क्रमशः]

क्या जीव और देह एक है?

परमपूज्य आचार्य कुंदकुंद के सर्वोत्तम ग्रंथराज 'समयसार' की सत्ताईसवीं गाथा पर हुए पूज्य कानजीस्वामी के प्रवचनों का संक्षिप्त सार यहाँ दिया जा रहा है। मूल गाथा इसप्रकार है:—

ववहारणओ भासदि जीवो देहो य हवदि खलु एक्को।
ण दु णिच्छयस्य जीवो देहो य कदा वि एक्कट्ठो॥२७॥

व्यवहारनय जीव और देह एक ही हैं—ऐसा कहता है; किंतु निश्चयनय से जीव और देह कभी भी एक पदार्थ नहीं हैं।

२६वीं गाथा में शिष्य ने अपना एकांत मत रखा था कि जीव और शरीर एक ही हैं। क्योंकि यदि आत्मा और शरीर को पृथक् मानेंगे तो तीर्थंकरों और आचार्यों की जो स्तुति की गई है, वह सभी मिथ्या सिद्ध होती है। शिष्य पूछता है कि हे आचार्यदेव! आप स्वयं भगवान की स्तुति करते समय अनेक प्रकार की उपमाएँ देते हैं कि—आपका मुख चंद्रमा से अधिक उज्ज्वल और सूर्य से भी अधिक प्रतापी है; इसलिए हम भी यही समझते हैं कि शरीर के गुणों से आत्मा की स्तुति होती है; शरीर का गुणगान करने से आत्मा का गुणगान होता है। इसलिए हमारी यह एकांत धारणा है कि शरीर ही आत्मा है।

आचार्यदेव शिष्य की उक्त बात सुनकर यह समझ जाते हैं कि शिष्य नयविभाग को नहीं जानता है। इसलिए उत्तर स्वरूप वे नयविभाग को स्पष्ट करते हुए गाथा कहते हैं। और वह नयविभाग इसप्रकार है:—

व्यवहारनय वस्तु को परवस्तु की अपेक्षा से जानता है तथा कथन करता है और निश्चयनय वस्तु को परवस्तुओं से निरपेक्ष होकर जानता है तथा कथन करता है अर्थात् व्यवहारनय पराश्रित है तथा निश्चयनय स्वाश्रित है। ज्ञान में जो नय होते हैं, उन्हें ज्ञाननय कहते हैं तथा कथन में जो नय होते हैं, वे शब्दनय कहलाते हैं।

अमृतचंद्राचार्यदेव नयविभाग को टीका में स्पष्ट करते हैं:—जैसे इस लोक में सोने और

चाँदी को गलाकर एक कर देने से एक पिण्ड का व्यवहार होता है; उसीप्रकार आत्मा और शरीर की परस्पर एक क्षेत्र में रहने की अवस्था होने से एकपने का व्यवहार होता है। इसप्रकार व्यवहारमात्र से ही आत्मा और शरीर का एकपना है, परंतु निश्चय से एकपना नहीं है; क्योंकि निश्चय से तो जैसे पीलापन आदि और सफेदी आदि जिसका स्वभाव है ऐसे सोने और चाँदी में अत्यंत भिन्नता होने से उनमें एकपदार्थपने की असिद्धि है, इसलिए अनेकत्व ही है; इसीप्रकार उपयोग और अनुपयोग जिनका स्वभाव है ऐसे आत्मा और शरीर में अत्यंत भिन्नता होने से एक पदार्थपने की असिद्धि है, इसलिए अनेकत्व ही है। ऐसा यह प्रगट नयविभाग है। इसलिए व्यवहारनय से ही शरीर के स्तवन से आत्मा का स्तवन होता है।

जिसप्रकार सोना और चाँदी को गलाकर एकत्रित करने से एक पिंड हो जाता है, जिसे मिलवाँ-सोना कहते हैं। यद्यपि यहाँ एकवस्तु नहीं है, तथापि रूढ़ि से एक पिण्ड का व्यवहार होता है। वास्तव में सोना और चाँदी एकमेक हुए ही नहीं हैं। 'एक द्रव्य दूसरे द्रव्यरूप परिणमन कर ही नहीं सकता'—यह सिद्धांत है। उसीप्रकार आत्मा और शरीर के परस्पर एकक्षेत्र में रहने से जो एकत्व का व्यवहार होता है, वह कथनमात्र ही है। यद्यपि पर्याय अपेक्षा दोनों द्रव्यों की पर्यायें एक क्षेत्र में होती हैं तथापि द्रव्यस्वभाव की अपेक्षा दोनों द्रव्य पृथक्-पृथक् ही हैं।

उदाहरणस्वरूप भगवान के अंतर्बाह्य स्वरूप पर विचार करें तो उनका केवलज्ञान और उनकी दिव्यध्वनि दोनों का एक क्षेत्र है। उनकी दिव्यध्वनि और आत्मप्रदेशों के कम्पन का भी एक क्षेत्र है। परंतु फिर भी दोनों पृथक्-पृथक् द्रव्यों की पर्यायें हैं। दोनों का एक क्षेत्र होने से उनमें एकमेकपने व्यवहार किया जाता है। परंतु निश्चय से उनमें एकत्व नहीं है। उसीप्रकार शरीर और आत्मा का एकक्षेत्रावगाही संबंध है परंतु निश्चय से उनमें एकत्व नहीं है।

जैसे पीलापन लक्षणवाला सोना तथा सफेदी लक्षणवाली चाँदी दोनों पृथक्-पृथक् पदार्थ हैं, वैसे ही उपयोग लक्षणवाला आत्मा तथा अनुपयोग लक्षणवाला शरीर दोनों भिन्न-भिन्न हैं। इसप्रकार यह निश्चयनय का कथन है।

जिसप्रकार मिट्टी के घड़े को घी का संयोग देखकर घी का घड़ा कहा जाता है परंतु वह घड़ा घीरूप नहीं परिणमता; परमार्थतः घी और घड़ा दोनों अलग-अलग हैं। उसीप्रकार

भगवान के साथ शरीर का संयोग देखकर शरीर के गुणों के द्वारा भगवान की स्तुति की जाती है। जैसे—भगवान का मुख, भगवान की वाणी आदि। किंतु मुख या वाणी भगवानरूप परिणमित नहीं होती, परमार्थतः दोनों द्रव्य अलग-अलग ही हैं। ऐसा परमार्थस्वरूप ख्याल में रहे तो उपचार कथन भी व्यवहार नाम पाते हैं, अन्यथा यह व्यवहार भी सच्चा नहीं है।

शास्त्र में कथन दो तरह से मिलते हैं—एक परमार्थ की अपेक्षा से और दूसरा व्यवहार की अपेक्षा से। जैसे कहा जाता है कि 'ज्ञानावरणी कर्म ने आत्मा के ज्ञानगुण को रोक रखा है', यह कथन व्यवहारनय की अपेक्षा से है। परंतु निश्चय से जड़कर्म चैतन्य आत्मा के गुण को रोकने में असमर्थ हैं। परंतु यह जीव निश्चयनय के कथन को तथा व्यवहारनय के कथन को यथार्थरूप से नहीं समझता, यही मूल में भूल है।

व्यवहारनय के द्वारा शरीर के स्तवन से आत्मा का स्तवन होता है। शरीर के १००८ लक्षणों तथा ॐकार वाणी के लक्ष से जो स्तवन होता है, वह शरीर का स्तवन है। परंतु शरीर और आत्मा का निमित्त-नैमित्तिक संबंध होने से ऐसा वर्णन किया जाता है कि भगवान की वाणी आदि।

इसप्रकार निमित्त-नैमित्तिक-संबंध को ख्याल में रखकर जो शरीर की स्तुति से आत्मा की स्तुति की जाती है; वह व्यवहार-स्तुति कहलाती है। वास्तव में तो आत्मा की शुद्धदशा प्रगट हुई—यही निश्चयस्तुति है। साधक आत्मा जब उस शुद्धदशा से चूकते हैं तो उनकी अवस्था में जो शुभराग आता है, वह व्यवहार-स्तुति नाम पाता है।

ज्ञानानंदस्वभावी आत्मा के भान बिना धर्म नहीं होता; परंतु अपूर्ण दशा में शुभराग आये बिना नहीं रहता। जो ऐसा मानते हैं कि शुभराग आता ही नहीं और ऐसा मानकर जो देवपूजा आदि विकल्पों के व्यवहार को उड़ाते हैं, वे भूल में हैं। और अपूर्ण दशा में शुभराग होता है, वह धर्म है-ऐसा मानकर जो धर्म के यथार्थ स्वरूप को नहीं समझते, वे भी भूल में हैं। इसलिए साधकदशा में होनेवाले शुभराग को व्यवहार से धर्म मानना, वास्तविक धर्म नहीं मानना।

ज्ञानी जीवों को जब शुभराग आता है, तब प्रतिमा की ओर लक्ष जाता है, तब वे भक्ति के वश प्रतिमा और भगवान में भेद न करते हुए कहते हैं कि 'जिन-प्रतिमा जिन-सारखी नमै बनारसि ताहि'।

जो पंडित बनारसीदासजी ऐसा मानते हैं तथा कहते भी हैं कि 'शरीर वह मैं नहीं, राग वह मैं नहीं, मैं तो ज्ञानानंदस्वभावी आत्मा हूँ'; उन्हीं को जब शुभराग आता है तो प्रतिमा के ऊपर लक्ष जाता है, तब प्रतिमा को ही भगवान कहते हैं। ऐसे ज्ञानी की अन्तरबाहर की दशा है।

यहाँ शिष्य एक मार्मिक प्रश्न करता है कि शास्त्र में कहीं व्यवहारनय का कथन किया है; कहीं निश्चयनय का कथन किया है। व्यवहारनय शरीर और आत्मा को एक कहता है तथा निश्चयनय शरीर और आत्मा को अलग-अलग कहता है। तब हम करें क्या ?

आचार्य उत्तर देते हैं कि शास्त्र में दोनों नयों की अपेक्षा से कथन है। जहाँ निश्चयनय की अपेक्षा वर्णन हो, वहाँ सत्यार्थ ऐसा ही है—यह समझना तथा जहाँ व्यवहारनय की अपेक्षा से कथन किया हो, वहाँ सत्यार्थ ऐसा है नहीं, परंतु उपचारादि से ऐसा कथन किया है—ऐसा जानना।

शास्त्र में कहीं ऐसा कथन आता है कि 'ईर्यासमितिपूर्वक चलना चाहिये' तथा कहीं पर ऐसा कथन आता है कि 'जो ऐसा मानता है कि शरीर की क्रिया का मैं कर्ता हूँ, वह महामिथ्यादृष्टि है'। यहाँ बुद्धिपूर्वक कथन का पृथक्करण करना चाहिये। प्रथम कथन में यह समझना चाहिये कि जब आत्मा अपने निर्विकार-शुद्धस्वभाव में संपूर्णतया स्थिर न रह सके तब अशुभभावों को दूर करने के लिये शुभभाव करने का उपदेश दिया। द्वितीय कथन में वस्तुस्वरूप की ओर से विचार किया गया है। वस्तुस्वरूप की ओर से विचार करे तो जिन जीवों की आयु समाप्त हो गई है, उन्हें बचाने में तीन लोक-तीन काल में कोई समर्थ नहीं है तथा जिनकी आयु शेष है, उन्हें मारने में कोई समर्थ नहीं है। 'ऐसी वस्तु की स्थिति है।' फिर भी अशुभभाव से बचने के लिये शुभभाव करने का उपदेश व्यवहार से दिया जाता है।

परमार्थतः शरीर की क्रिया का कर्ता आत्मा नहीं है, तब अन्य जीव को जिलाने तथा मारने का कर्ता आत्मा कैसे हो सकता है ? इसप्रकार का कथन परमार्थ दृष्टि से है, इसे 'ऐसे ही है'—ऐसा श्रद्धान करना चाहिये।

जहाँ शास्त्र में यह कथन हो कि 'आत्मा में राग-द्वेष होता ही नहीं', वहाँ यह कथन द्रव्यदृष्टि की अपेक्षा से जानना चाहिये। जहाँ यह कहा हो कि 'आत्मा में राग-द्वेष है' वह कथन पर्यायदृष्टि की अपेक्षा से जानना चाहिये। इसप्रकार जो कथन जिस अपेक्षा से है, उसे उसी अपेक्षा से जानना चाहिये, दोनों की खिचड़ी नहीं बनानी चाहिये।

निश्चय-व्यवहार की यह स्थिति समझकर यह निष्कर्ष निकालना चाहिये कि जो परपदार्थ है, वह तीन लोक और तीन काल में भी कभी अपना नहीं हो सकता। इसलिए पर को अपना बनाना तो असंभव ही है। अपना स्वभाव जो नित्य अपने पास है, उसे समझना ही एकमात्र सरल कार्य है। किंतु अनादिकालीन अनभ्यास के कारण यह कार्य अत्यंत कठिन मालूम पड़ता है।

इस जीव को अनादिकाल से ही 'पर में मैं कुछ कर सकता हूँ, तथा पर मेरा कुछ कर सकता है'—ऐसी बुद्धि है। इसीलिए यह भगवान के पास आकर भी यही माँगता है कि हे भगवान! मेरा उद्धार करो। परंतु वह यह नहीं सोचता कि जब एक द्रव्य दूसरे द्रव्य का कुछ भी नहीं कर सकता तो भगवान कैसे मेरा भला-बुरा कर देंगे? जब हम अपने स्वभाव की ओर स्वयं दृष्टि देंगे तो बाह्य में निमित्तरूप से देव-शास्त्र-गुरु होंगे। परंतु निमित्त की ओर दृष्टि करके यह मानना कि देव मेरा कुछ कर देंगे, शास्त्र मेरा कुछ कर देंगे, गुरु मेरा कुछ कर देंगे—यह सब पराश्रितता, मिथ्यादृष्टिपना है।

भगवान को 'तरणतारण' कहा जाता है किंतु जीव तरता तो अपने भाव से है, फिर भी भगवान के प्रति बहुमान का भाव होने से 'भगवान ने तार दिया'—ऐसा व्यवहार है।

इसप्रकार आचार्य ने उक्त गाथा में यह स्पष्ट किया कि शरीरादि परपदार्थ रूपी तथा जड़ हैं व उसके गुण-पर्याय सभी जड़मय ही हैं। तथा आत्मा अरूपी तथा चैतन्यस्वभावी है व उसके ज्ञान-दर्शनादि गुण तथा पर्यायें भी चेतनामय ही हैं। रूपी जड़ से चैतन्य अरूपी आत्मा को कोई लाभ नहीं है। आत्मा ज्ञाता-दृष्टास्वभावी तथा पूर्ण वीतराग-स्वभावी है। यदि उसको पहिचान कर उसमें स्थिर हों तो वास्तविक धर्म हो।

❀*❀*❀

भीलवाड़ा (राज०) : विलंब से प्राप्त समाचारों के अनुसार २८ अप्रेल १९७९ को पूज्य कानजीस्वामी का जन्मजयंती महोत्सव धूमधाम से मनाया गया। इस अवसर पर आयोजित सभा में अनेक वक्ताओं ने गुरुदेवश्री के जीवनदर्शन पर प्रकाश डाला तथा उनके दीर्घजीवी होने की कामना की। लगभग ५०० विद्यार्थियों को मिष्टान्न वितरण किया गया।

—भागचंद अजमेरा

कैसा है यह आत्मा?

परमपूज्य दिगंबर आचार्य कुन्दकुन्द के प्रसिद्ध परमागम 'नियमसार' की ४३वीं गाथा पर हुए पूज्य कानजीस्वामी के प्रवचनों का संक्षिप्त सार यहाँ दिया जा रहा है। मूल गाथा इसप्रकार है:—

णिद्दंडो णिद्दंद्वो णिम्ममो णिक्कलो णिरालंबो।
णीरागो णिद्दोसो णिम्मूढो णिब्भयो अप्पा॥४३॥

आत्मा निर्दंड, निर्द्वंद्व, निर्मम, नि:शरीर, निरालंब, निराग, निर्दोष, निर्मूढ़, और निर्भय है।

मन-वचन-काय के निमित्त से होनेवाला विकार वह दंड है, वह त्रिकालीस्वभाव में नहीं है। राग-द्वेष का द्वैत शुद्धस्वभाव में नहीं है। शुद्धात्मा में ममता नहीं, शरीर नहीं, पर का आलंबन नहीं, राग नहीं, द्वेष नहीं, मूढ़ता नहीं, भय नहीं। पर्याय में होनेवाले दोष शुद्धस्वभाव में नहीं—ऐसा कहकर स्वभावदृष्टि कराने का प्रयोजन है।

(१) मन-वचन-काय के दंड पर्याय में हैं, शुद्धस्वभाव दंडरहित और कर्मरहित है।

'मनदंड, वचनदंड और कायदंड के योग्य द्रव्यकर्म तथा भावकर्म का अभाव होने से आत्मा निर्दंड है।'

आत्मा की एकसमय की पर्याय में मन-वचन-काय के लक्ष से होनेवाले शुभाशुभभाव दंड हैं और वे एकसमय की अवस्थामात्र में हैं। भक्ति का भाव, उपवास का विकल्प, महाव्रत के परिणाम यह सभी दंड हैं। हिंसा, झूठ, चोरी अशुभ राग है; दया, दान, पूजा आदि शुभराग है; दोनों ही दंड हैं। उस दंड के योग्य द्रव्यकर्म और भावकर्म का एकसमय की पर्याय में निमित्त-नैमित्तिक संबंध है।

यहाँ तीन प्रकार के दंड कहे, वे सभी एक ही समय में होते हैं—ऐसा मत समझना। मनोयोग के समय वचनयोग नहीं होता-ऐसा जानना। जब शुभ उपयोग हो तब अशुभ नहीं होता तथा शुभ-अशुभ के भी असंख्य प्रकार हैं, एकसमय में एक भेद होता है। परंतु यहाँ

समुच्चयरूप में कहा है कि मन-वचन-काय के दंड के परिणाम पर्याय में होते हैं, किंतु शुद्धस्वभाव की दृष्टि से देखा जाये तो दंड के परिणाम तथा उनके योग्य द्रव्यकर्मों का शुद्धस्वभाव में अभाव है-अतः आत्मा निर्दंड है।

यदि इस कथन से कोई ऐसा समझ बैठे कि पर्याय में भी आत्मा निर्दंड है तो यह बात असत्य है। आत्मा पर्याय में भी निर्दंड हो तो फिर कुछ भी करने को नहीं रहा और ऐसी दशा में पर्याय में प्रकट आनंद भी होना चाहिये किंतु ऐसा है नहीं। यहाँ तो पर्यायबुद्धि छुड़ाने के लिये और स्वभावबुद्धि कराने के लिये दंड का शुद्धभाव में अभाव बताया है।

यह शुद्धभाव अधिकार है। जीव को शुद्धभाव की दृष्टि होने पर पर्यायबुद्धि छटती है और अस्थिरता टलकर स्थिरता होने पर केवलज्ञान तथा मुक्ति प्राप्त होती है।

आत्मा की पर्याय में मन-वचन-काय के लक्ष से होनेवाले शुभाशुभ सभी भाव दंड हैं, किंतु मात्र इतना ही आत्मा नहीं है। आत्मा त्रिकाल शुद्ध है, अतः दंड की रुचि छोड़कर त्रिकालस्वभाव की रुचि करने से धर्मदशा प्रगट होती है।

प्रश्न : ऐसी निर्दंड दशा कौन कब प्रकट कर सकता है ?

समाधान : प्रत्येक योग्य जीव वह प्रकट कर सकता है। व्यापारी समझे कि व्यापार-धंधे की क्रिया जड़ है और व्यापार-धंधे के अशुभराग का दंड पर्याय में होने पर भी वह विकार आत्मा का स्वरूप नहीं है, आत्मा शुद्धस्वरूपी है; ऐसी दृष्टि रखना वह निर्दंडपना है। पर्याय में दंड होने पर भी सच्ची दृष्टि चौबीस घंटे रख सकता है। पर्याय में दंड न हो तो वीतरागता होनी चाहिये; परंतु धर्मी समझता है कि विकार तो एकसमयमात्र की स्थितिवाला है—त्रिकाल में वह नहीं है। इसप्रकार त्रिकाली शुद्धस्वभाव की रुचि होने पर पर्याय की रुचि नहीं रहती—यही धर्म है।

(२) जीवादि नव पदार्थ जगत में हैं, परंतु अपने ध्रुव शुद्ध आत्मा में अन्य जीवों का तथा अजीवादि समस्त पदार्थों का अभाव है; अतः आत्मा द्वैतरहित है-निर्द्वन्द्व है।

'निश्चय से परम पदार्थ के अतिरिक्त समस्त पदार्थ समूह का (आत्मा में) अभाव होने से आत्मा निर्द्वंद्व है।'

आत्मा शुद्ध चैतन्य एकरूप है, उसमें बाह्य अन्य चेतन और जड़ पदार्थों का तो अभाव है ही; साथ ही दया-दानादि विकल्पों का भी अभाव है। दूसरे जीव, अजीव पदार्थ, पुण्य, पाप,

आस्रव, बंध, संवर, निर्जरा और मोक्ष तत्त्व भी शुद्ध ध्रुवस्वभाव में नहीं हैं। आत्मा के साथ यदि इनमें से कोई भी तत्त्व मान लिया जाये तो द्वैतपना उत्पन्न होता है। मोक्ष भी एकसमय की पर्याय है, परम शुद्धभाव में उसका भी अभाव है। ऐसे शुद्धभाव का अवलंबन लेने पर अनेकपना अथवा द्वैतपना उत्पन्न नहीं होता और आत्मा का अनुभव होता है। जीव-अजीवादि सात तत्त्व कहे उनके लक्ष से विकल्प उठते हैं अवश्य, और पर्याय में द्वैतपना अथवा अनेकपना भी है अवश्य।

कोई कहे कि आत्मा सर्वथा अद्वैत ही है और अन्य वस्तुयें हैं ही नहीं तथा पर्याय भी नहीं है तो यह बात सर्वथा खोटी है। दूसरे जीव तथा अजीव पदार्थ हैं और अपने में विकल्प उठने पर रागवाली, आस्रव-बंधवाली पर्याय होती है और शुद्धता होने पर संवर, निर्जरा, मोक्ष की पर्याय होती है-इसप्रकार पर्याय भी है; परंतु वह व्यवहारनय का विषय है। आत्मा को पर्याय जैसे द्वैत के लक्ष से पर्यायबुद्धि उत्पन्न होती है और धर्म नहीं होता। इसलिये द्रव्यदृष्टि कराने के लिये, अभेद अद्वैत आत्मा की श्रद्धा कराने के लिये ऐसा कहा कि शुद्ध आत्मा में अन्य पदार्थ तथा मोक्ष की पर्याय का भी अभाव है, आत्मा द्वैतरहित है अर्थात् निर्द्वंद्व है; ऐसा निर्द्वंद्व आत्मा सम्यग्दर्शन का विषय है। उसको लक्ष में लेकर स्थिर होने से द्वैत का अभाव होता है और आत्मा एकरूप अपना अनुभव करता है।

(३) प्रशस्त-अप्रशस्त मोह-राग-द्वेष एकसमय की अवस्था में ही हैं, किंतु शुद्ध ध्रुवस्वभाव में उनका अभाव है; इसलिए आत्मा निर्मम है।

'प्रशस्त-अप्रशस्त समस्त मोह-राग-द्वेष का अभाव होने से आत्मा निर्मम है (ममता रहित है)।'

देव-शास्त्र-गुरु के प्रति लगन हो वह प्रशस्त मोह और राग है। भगवान के प्रति, सम्मेदशिखरजी, गिरनारजी आदि तीर्थों के प्रति राग हो वह प्रशस्त राग है और सच्चे देव-शास्त्र-गुरु के विरुद्ध कोई बोलता हो, उनके प्रति अल्प द्वेष हो जावे तो वह प्रशस्त द्वेष है। प्रशस्त मोह-राग-द्वेष पर के कारण नहीं होता अपितु अपने कारण ही एकसमय की पर्याय में होता है और वह पुण्य बन्ध का कारण है—धर्म का कारण नहीं है।

स्त्री, पुत्र, कुटुंबादि के प्रति झुकाव होना अप्रशस्त मोह और राग है और अपने कुटुंब से विरुद्ध हो उसके प्रति द्वेष होना वह अप्रशस्त द्वेष है। वह मोह-राग-द्वेष परजीवों के कारण से

नहीं होता, अपने कारण से ही एकसमय की पर्याय में होता है।

पुनः मोह और द्वेष साथ हो अथवा मोह और राग साथ-साथ हो, किंतु कभी भी तीनों एकसाथ नहीं होते। इसी भाँति प्रशस्त के समय अप्रशस्त और अप्रशस्त के समय प्रशस्त नहीं होता। जब जिसप्रकार का वर्तता हो उसकी रुचि छुड़ाने के लिये ऐसा कहा कि शुद्ध आत्मा में प्रशस्त-अप्रशस्त समस्त मोह-राग-द्वेष का अभाव है। देव-शास्त्र-गुरु के कारण राग हो अथवा कुटुंब के कारण राग हो—ऐसा वस्तुस्वरूप तो है ही नहीं, परंतु अपने कारण से होनेवाले ममता के परिणाम एकसमय जितने ही हैं; फिर भी शुद्धस्वभाव तो ममतारहित ही है।

निर्मम आत्मा के आश्रय से प्रगट होनेवाली स्व-परप्रकाशक ज्ञान की निर्मल पर्याय वह जैनशासन है।

कोई जीव ऐसा कहे कि पर्याय में भी ममता नहीं है अथवा ममता पर के कारण से होती है तो यह मान्यता खोटी ही है, क्योंकि यदि पर के कारण से ममता होती हो तो वह कभी टल नहीं सकती; और यदि ममता होवे ही नहीं तो वर्तमान में प्रगट आनंद होना चाहिये; तथा यदि ममता जितना ही आत्मा हो तो ममता अपना स्थायी स्वरूप ही बन जाये-किंतु ऐसा नहीं है। मोह-राग-द्वेष एकसमय की अवस्था में हैं, उनकी रुचि ही संसार है। उन जितना ही आत्मा को मानना वह जैनदर्शन नहीं है; किंतु मोह-राग-द्वेष आत्मा में नहीं है, आत्मा शुद्ध चैतन्य निर्मम है—ऐसे शुद्ध चैतन्य का अवलंबन लेना वह धर्म है और वही जैनदर्शन है।

इसप्रकार त्रिकाली निर्मम स्वभाव का आश्रय लेने पर स्वपर-प्रकाशक ज्ञान विकसित होता है और उसमें त्रिकाली स्व-आत्मा को जानते हुए अवशेष राग-द्वेष को भी जान लेने की सामर्थ्य होती है। इस भाँति स्वपर-प्रकाशक स्वभाववाली निर्मल पर्याय को जैनशासन कहते हैं और यही नियमसार है।

(४) शरीर के निमित्तपने की योग्यता पर्याय में है, परंतु शुद्धस्वभाव में ऐसी योग्यता नहीं है; अतः आत्मा निःशरीर है।

'निश्चय से औदारिक, वैक्रियक, आहारक, तैजस और कार्माण नाम के पाँच शरीरों के समूह का अभाव होने से आत्मा निःशरीर है।'

मनुष्य तथा तिर्यंच के औदारिक शरीर होता है। नारकी और देवों के वैक्रियक शरीर होता है। किसी भावलिंगी लब्धिवाले मुनि को तत्त्व में कोई आशंका हो और भगवान के पास

जाने की इच्छा करे और लब्धि का प्रयोग करे तो माथे में से सफेद पुतला निकलता है जो भगवान के समीप जाकर शंका समाधान करता है—उस शरीर को आहारक शरीर कहते हैं। शरीर को घर्षण करने से जिस उष्णता का आभास होता है, वह तैजस शरीर की है। तथा आठ कर्मों का समूह वह कार्मण शरीर है।

तैजस, कार्मण शरीर सर्व संसारी जीवों के होते हैं। इन शरीरों का संबंध जीव की एकसमय की पर्याय के साथ निमित्त-नैमित्तिक रूप में होता है। संसारदशा में शरीर निमित्तरूप से होता है। पाँचों शरीर एकसाथ नहीं होते, परंतु जिस समय जो शरीर हो वही समझ लेना; परंतु यह संबंध पर्याय के साथ ही है। यदि शुद्ध स्वभाव की दृष्टि से देखा जावे तो आत्मा का शरीर के साथ निमित्त-नैमित्तिक संबंध भी नहीं है।

आत्मा नि:शरीर है, इसी के लक्ष से धर्म होता है। मुनि को आहारक शरीर की लब्धि मिले वह भी एकसमय की पर्याय है, शुद्धात्मा में वह पर्याय नहीं है, और मुनि को लब्धि के ऊपर दृष्टि भी नहीं होती। यदि कदाचित् विकल्प आवे और लब्धि में उपयोग लगावें तो भी त्रिकाली शुद्धात्मा का आश्रय एकसमय भी नहीं छूटता। विग्रहगति में मात्र तैजस और कार्माण शरीर होते हैं। ज्ञानी जीवों को विग्रहगति में भी इन दोनों शरीरों का आश्रय नहीं होता अपितु शुद्धात्मा का ही आश्रय होता है।

इसप्रकार अपना शुद्धात्मा शरीर के निमित्त-नैमित्तिक संबंध से रहित है। ऐसे त्रिकाली स्वभाव की श्रद्धा-ज्ञान करने पर पर्याय में ऐसा निमित्त-नैमित्तिक संबंध होता है, उसका यथार्थ ज्ञान ज्ञानी को होता है। पर्याय की योग्यता के ज्ञान के कारण त्रिकाली आत्मा का ज्ञान नहीं होता, किंतु त्रिकाली स्वभाव का ज्ञान होने पर पर्याय का ज्ञान यथार्थ हो जाता है। इसप्रकार नि:शरीरी त्रिकाली शुद्धभाववाले आत्मा का आश्रय करने से राग-द्वेष का अभाव हो जाता है और पर्याय में शरीर के निमित्त की योग्यता भी नहीं रहती। अत: शरीर का लक्ष छोड़कर शुद्धस्वभाव की श्रद्धा-ज्ञान करना उचित है—वही धर्म है।

(५) कारणपरमात्मा को परपदार्थ तथा शुभाशुभ भावों का अवलंबन नहीं है; इसलिये आत्मा निरालंब है।

'निश्चय से परमात्मा को परद्रव्य का अवलंबन नहीं होने से आत्मा निरालंब है।'

आत्मा को देव-शास्त्र-गुरु का अवलंबन तो नहीं, परंतु दया-दानादि भावों का भी

अवलंबन नहीं है। आत्मा को अपने शुद्धस्वभाव का अवलंबन है, किंतु पर का अवलंबन नहीं है; इसलिये निरालंब है। व्यवहारशास्त्रों में कदाचित् ऐसा कथन आवे कि सम्यग्दृष्टि को शुभभाव का तथा भगवान का अवलंबन है, वहाँ ऐसा समझना चाहिये कि वह कथन निमित्त का ज्ञान कराने के लिये है। आत्मा परपदार्थ से और विकार से रहित है—ऐसी श्रद्धा-ज्ञान करने के पश्चात् जब तक परिपूर्ण वीतराग दशा न हो तब तक अपूर्ण दशा में राग हो आता है और तब जिस-जिस प्रकार के राग के निमित्त हों उनके ऊपर लक्ष जाता है, अतः व्यवहार से उनका आलंबन लिया—ऐसा कथन करने में आता है। उसीसमय धर्मी जीव को राग अथवा भगवान का अवलंबन नहीं है, किंतु शुद्धस्वभाव का ही अवलंबन वर्तता है; तथापि जानता है कि निर्बलता के कारण राग हुआ है और निमित्त के ऊपर लक्ष जा रहा है। कोई जीव ऐसा माने कि अपूर्ण दशा में वैसे राग और निमित्त होते ही नहीं तो यह मान्यता खोटी है; तथा राग और निमित्त हैं इसलिये धर्म हुआ—ऐसा यदि माने तो भी मिथ्या है। वे जीव निश्चय और व्यवहार दोनों में से किसी को भी नहीं समझते।

धर्मी जीव त्रिकालीस्वभाव का ज्ञान करता हुआ अधूरी दशा में रहनेवाले राग और निमित्तों का ज्ञान व्यवहार से करता है।

इंद्र भी भक्ति के समय नृत्य करने लगता है। देह की क्रिया देह के कारण होती है। निर्बलता का राग ज्ञान का श्रेय है। सम्यग्दृष्टि राग को अपना स्वरूप नहीं मानता। व्रत, तप, पूजा, भक्ति का भाव यह राग है। जिस भाव से तीर्थंकर नामकर्म बँधे वह भी राग है और उसका आश्रय करने योग्य नहीं। अपना शुद्ध आत्मा एक ही आलंबन करने योग्य है—ऐसा जिसे भान है उसे ही धर्मदशा प्रगट होती है।

तत्त्वार्थसूत्र में विकार को स्वतत्त्व कहा है, उसका कारण यह है कि वह विकार पर के कारण नहीं है, परंतु यह जीव स्वयं करता है—इसप्रकार वहाँ पर्याय सत् बतलाना है; और यहाँ उस विकार का अवलंबन धर्मी जीव को नहीं है—ऐसा बतलाकर शुद्धस्वभाव को निरालंब बतलाना है। इसप्रकार धर्मी जीव को शुद्धस्वभाव की ही रुचि वर्तती है।

शुद्धस्वभाव तो नित्य है और समय-समय पर विकार अनित्य है, अतः उसका ज्ञानी को निषेध वर्तता है। इसप्रकार त्रिकालीस्वभाव का ज्ञान करने पर पर्याय में रहनेवाले अनित्य राग-द्वेषादि का ज्ञान हो जाता है। त्रिकाली का ज्ञान करना वह निश्चयनय से है और राग-

द्वेषादि का ज्ञान हो जाता है, वह व्यवहारनय से है। इसप्रकार ज्ञान प्रमाण होता है। जो व्यवहार से लाभ मानते हैं, उनका निश्चय और व्यवहार एक भी सच्चा नहीं। और यदि ऐसा कहें कि साधकदशा में राग और निमित्त बिलकुल होते ही नहीं, तो भी उनका ज्ञान खोटा है। त्रिकालस्वभाव की श्रद्धा और ज्ञान होने पर भी अपूर्णदशा में जो राग और निमित्त होते हैं, उनका धर्मी जीव व्यवहार से ज्ञान करता है तथापि राग के समय भी अवलंबन तो शुद्धस्वभाव का ही वर्तता है। *[शेष अगले अंक में]*

द्रव्यसंग्रह प्रवचन

वृहद्द्रव्यसंग्रह पर पूज्य स्वामीजी के प्रवचन सन् १९५२ में हुए थे। जिज्ञासु पाठकों के लाभार्थ उन्हें यहाँ क्रमशः दिया जा रहा है।

[गतांक से आगे]

(७) तम (अंधकार) :— दृष्टि को रोकनेवाला जो अंधकार है, उसको तम कहते हैं, वह पुद्गलद्रव्य की पर्याय है।

प्रश्न—दीपक बुझा दिया इसलिये अंधकार हुआ ?

उत्तर—नहीं ! यह बात असत्य है। अज्ञानी मानता है कि दीपक आया इसलिये प्रकाश हुआ और दीपक बुझ गया इसलिये अंधकार हुआ अथवा बादलों के कारण अंधकार मानता है—यह सब भ्रांति है। तम अथवा अंधकार पुद्गल की पर्याय है, दूसरे के कारण नहीं है।

प्रश्न—इसमें धर्म क्या आया ?

उत्तर—जो जीव पर से अंधकार मानते हैं, वे संयोग को देखनेवाले हैं। अंधकार स्वतंत्र होता है, इसप्रकार जाने बिना अंधकार नष्ट नहीं होता। जो जीव स्वभाव से देखता है, वह स्वयं के स्वभाव को स्वतंत्र मानता है। पुद्गल की अवस्था स्वतंत्र है; इसप्रकार जो मानता है, वह जीव स्वयं की अवस्था स्वतंत्र है ऐसा माने बिना नहीं रहता। स्वयं की अवस्था और

द्रव्यस्वभाव को स्वतंत्र मानकर स्वभाव की ओर झुकने से सम्यग्दर्शन-ज्ञान-चारित्र की पर्याय प्रगट होती है और वही धर्म है।

दीपक ले लिया इसलिये अंधकार गया ऐसा माननेवाले संयोग को देखते हैं। अंधकार पुद्गल की स्कंधरूप व्यंजनपर्याय है। वह आँख से दिखती है इसलिये स्थूल है और हाथ से पकड़ में नहीं आती इसलिये सूक्ष्म है, इससे स्थूल-सूक्ष्म कहते हैं।

(८) छाया— वृक्ष के निमित्त से होनेवाली छाया पुद्गल की अवस्था है। छाया वृक्ष के कारण नहीं है, छाया और वृक्ष भिन्न-भिन्न स्कंध हैं। वृक्ष कटने के बाद मिलता नहीं है (अर्थात् पूर्ववत् नहीं जुड़ता) इसलिये वह स्थूल-स्थूल है और छाया स्थूल-सूक्ष्म है। वह आँख से दिखती है इसलिये स्थूल है और हाथ से पकड़ में नहीं आती इसलिये सूक्ष्म है। इसप्रकार स्थूल-सूक्ष्म है। दोनों स्कंध की जाति भिन्न है। स्कंध के छह भेद कहे हैं, वे जीव के कारण नहीं हैं, किंतु पुद्गल के कारण हैं। एक दूसरे के कारण हों तो छह भेद नहीं रहते। इसप्रकार स्वतंत्र छाया है—ऐसा समझकर आत्मा केवल जानने-देखनेवाला है—इसप्रकार ज्ञान करना वह धर्म है।

आत्मा ज्ञानस्वभावी है, वही उपादेय है, ऐसी दृष्टि करके सम्यग्दर्शन प्रगट होने से सम्यग्ज्ञान प्रगटता है, तथा वे अजीवादि परपदार्थ स्वतंत्र हैं—इसप्रकार जानता है। एक-दूसरे के आधीन माने वह मिथ्यादृष्टि है। यहाँ पुद्गल की स्कंधरूपअवस्था विभावव्यंजनपर्याय की स्वतंत्रता की बात चलती है।

जो स्कंध पृथक् होने के बाद मिलता नहीं है, वह स्थूल-स्थूल है। जैसे—लकड़ी, पृथ्वी वगैरह।

जो स्कंध पृथक् होने के बाद फिर मिल जाता है, वह स्थूल है। जैसे—तेल, घी आदि।

जो स्कंध आँख से दिखे और दूसरी इंद्रिय से न पकड़ा जाये, वह स्थूल-सूक्ष्म है। जैसे—छाया आदि।

जो स्कंध आँख से न दिखे लेकिन दूसरी किसी इंद्रिय से ग्रहण किया जाये, वह सूक्ष्म-स्थूल है। जैसे—शब्द आदि।

किसी इंद्रिय से भी ग्रहण न किया जाये वह सूक्ष्म है। जैसे—कार्माण स्कंध।

कार्माण से सूक्ष्मस्कंध—दो परमाणु से अनंत परमाणु तक के स्कंध वह सूक्ष्म-सूक्ष्म है।

वृक्ष स्थूल-स्थूल है, छाया स्थूल-सूक्ष्म है। अंगुली स्थूल-स्थूल है, उसकी छाया स्थूल-सूक्ष्म है। इसप्रकार स्कंधों की जाति ही जुदी है।

लोहे की छड़ी स्थूल-स्थूल है, उसकी धूप में छाया पड़ती है वह स्थूल-सूक्ष्म है। आदमी का शरीर स्थूल-स्थूल है और उसकी छाया स्थूल-सूक्ष्म है। हवा से वृक्ष हिलता है उसमें वृक्ष स्थूल है लेकिन उसमें उसकी छाया क्षेत्रांतर नहीं होती। मनुष्य को चलते समय अपनी परछाई मानो दौड़ती दिखती है किंतु परछाई नहीं दौड़ती है। पृथ्वी पर भिन्न-भिन्न परमाणु काले-कालेरूप परिणमित दिखते हैं।

प्रश्न—यह अंगुली धूप में रखी इसलिए उसके कारण से उसकी छाया काले रूप में दिखती है न?

उत्तर—नहीं, ऐसा नहीं है। अंगुली स्थूल-स्थूल है और छाया स्थूल-सूक्ष्म है, दोनों की जाति भिन्न है। अज्ञानी संयोग को मानता है, ज्ञानी स्वभाव को मानता है। प्रत्येक पर्याय स्वतंत्र है, वह स्वयं से हो रही है। जीव के कारण तो नहीं, किंतु दूसरे पुद्गलों के कारण भी नहीं है। मैं तो उस पर्याय को जाननेवाला हूँ—ऐसा कहना वह व्यवहार है। स्वयं का ज्ञान होने से छाया का ज्ञान हो जाता है, इसप्रकार यथार्थ ज्ञान करना वह धर्म है। प्रत्येक पदार्थ स्वयंसिद्ध है, मेरा ज्ञान असंयोगी है; ज्ञानरूप परिणमना मेरा कार्य है। राग होने पर भी जिसको ज्ञान की मुख्यता है, वह जीव ज्ञानरूप परिणमित होने से पर को व्यवहार से जानता है।

यह द्रव्यसंग्रह है। प्रत्येक द्रव्य अपनी वर्तमान पर्याय सहित स्वतंत्र है, ऐसा सिद्ध करना है। मनुष्य का शरीर स्थूल-स्थूल है और उसकी परछाई दर्पण में पड़ती है वह दर्पण की पर्याय है, वह भी स्थूल-स्थूल है। प्रतिबिंब और परछाई भिन्न वस्तु हैं। मनुष्य के शरीर की परछाई स्थूल-सूक्ष्म है और दर्पण का प्रतिबिंब स्थूल-स्थल है। दर्पण में मैदान दिखता है, वह दर्पण की स्वच्छता है, वह स्थूल-स्थूल है, मैदान के कारण नहीं है। छाया (परछाई) और प्रतिबिंब किसी के कारण नहीं हैं। पुद्गल की पर्याय अन्य के कारण होवे तो पुद्गल द्रव्य सिद्ध नहीं हो सकता।

यहाँ द्रव्यों की स्वतंत्रता बताकर भेदज्ञान कराते हैं। प्रत्येक द्रव्य की वर्तमान पर्याय स्वतंत्र है और वह अपने कारण है और मेरा विकार भी मेरे कारण है, पर के कारण नहीं और फिर विकार क्षणिक है, द्रव्य त्रिकाल है। क्षणिक के कारण ये त्रिकाल नहीं हैं—इसप्रकार

निर्णय करने से क्षणिक का आश्रय छोड़कर त्रिकालीस्वरूप का आश्रय लेने से यथार्थ ज्ञान प्रगटता है। स्वपर-प्रकाशक ज्ञान प्रगट होने से पुद्गल का यथार्थ ज्ञान होता है।

(९) उद्योत—चंद्रमा के विमान के प्रकाश को तथा जुगनू वगैरह तिर्यंच जीवों के शरीर के प्रकाश को उद्योत कहते हैं। वह उद्योत पुद्गलद्रव्य की विभावव्यंजनपर्याय है। चंद्रमा के विमान में एकेन्द्रिय जीव है इसलिए उद्योत है—ऐसा नहीं है। सिंह की आँख में प्रकाश दिखता है, वह जीव के कारण नहीं है, किंतु वह उद्योत पुद्गलद्रव्य की विभावव्यंजनपर्याय है।

(१०) आतप—सूर्य के विमान के प्रकाश को तथा सूर्यकांत मणि के प्रकाश को आतप कहते हैं। उसके अंदर एकेन्दिय जीव है इसलिए प्रकाश है—ऐसा नहीं है। पुद्गल का द्रव्यसत्, गुणसत् और पर्यायसत् है। पर्याय पर के कारण होवे तो पर्याय सिद्ध नहीं होती। आतप पुद्गल की विभावव्यंजनपर्याय है। पुद्गल में रूक्ष और स्निग्ध के कारण बंध होता है। वह जीव का दृष्टांत देकर समझाते हैं। यहाँ ऐसा आशय है कि शुद्धनिश्चयनय से जीव के निज आत्मा की प्राप्तिरूप सिद्धस्वरूप में स्वभावव्यंजनपर्याय है। आत्मा ज्ञान और आनंदस्वरूप है-ऐसी आत्मा की श्रद्धा, ज्ञान और रमणता करके पूर्ण शुद्धता प्रगट होती है, वह सिद्धदशा है। वह दशा स्वभावव्यंजनपर्याय है। यहाँ संपूर्ण द्रव्य की पर्याय की बात चलती है। ऐसी शक्ति प्रत्येक जीव में रहती है, तब भी अनादि काल से अज्ञानी जीव कर्म के आधीन हुआ पुद्गल के स्निग्ध और रूक्ष के स्थानभूत राग-द्वेष कर्म करता है। कर्म उसको आधीन करते नहीं, लेकिन स्वयं को दया-दानादि विकार जितना मानकर अथवा कर्म आदि निमित्त के आधीन होकर मिथ्यात्व, राग और द्वेषरूप परिणमता है और इसलिए आत्मा के शुद्धस्वभाव के आश्रय से होनेवाली स्वाभाविक परमानंदरूप स्वस्थ अवस्था से भ्रष्ट होता है अर्थात् आत्मा की निरोगदशा —आनंददशा उत्पन्न नहीं करता है। आत्मा का मूल स्वभाव तो ज्ञानरूप है, उसका ज्ञेय अपना आत्मा स्वयं है। उसरूप स्वयं, स्वयं में एकाकार होकर आनंद का अनुभव करना चाहिए, वह नहीं करता है। स्वयं का एकरूप जानने का स्वभाव छोड़कर ये बाहर के पदार्थ हों तब ठीक और न हों तब अच्छा नहीं; इसप्रकार ज्ञेयों में सामान्यतया भेद करके ज्ञान मिथ्याभ्रांति, राग और द्वेष में अटकता है। इससे अज्ञानी जीव मनुष्य, नारकी आदि विभावव्यंजनपर्यायरूप होता है।

मनुष्य और नारकी के शरीर की बात नहीं है। अंदर आत्मा उसरूप परिणाम और

आकाररूप हुआ वह अरूपी आत्मा की विभावव्यंजनपर्याय की बात है। मैं सेठ हूँ, मैं पैसेवाला हूँ—ऐसा अभिमान करके स्वभाव से भ्रष्ट होकर चारों गति में घूमता है।

स्वयं का ज्ञान स्वपर-प्रकाशक है, वह ज्ञान प्रगट होने से अविनाभावी आनंद प्रगट होता है। वह आनंद कैसा है ? उसे ज्ञान जानता है। यहाँ आनंद की मुख्यता से बात करते हैं। स्वयं के शुद्ध आत्मा की श्रद्धा-ज्ञान करके पूर्णता प्रगट करे, तब परमानंद निरोग दशा प्रगटती है; किंतु जो कर्म के आधीन होती है, उससे आकुलता होती है, चार गतिरूप परिणमन होता है। सिद्ध के जीव स्वभावव्यंजनपर्याय वाले हैं और पर के आधीन हुए जीव विभावव्यंजनपर्याय वाले हैं। यह जीव का दृष्टांत पूरा हुआ, उसका सिद्धांत अब पुद्गल में घटाते हैं।

इसीप्रकार पुद्गल में परमाणु शुद्ध निश्चयनय से स्वभावव्यंजनपर्याय वाला है, तब भी पुद्गल में स्निग्ध तथा रूक्ष के कारण बंध होता है। इस नियमानुसार जीव के राग-द्वेष स्थानीय पुद्गल में रूक्ष-स्निग्ध के कारण दो परमाणु से अनंत परमाणु तक स्वयं की योग्यता के समय स्कंधरूप अवस्था धारण करते हैं। पहले शब्द, बंध, स्थूल, सूक्ष्म वगैरह स्कंधों के दस भेद बताये वे सब स्निग्ध-रूक्ष के कारण होते हैं। शब्द बोला जाता है, वह आत्मा से तो बोला नहीं जाता, ओठ से भी नहीं बोला जाता, ओठ आहारवर्गणा में से बना हुआ है। शब्द भाषावर्गणा में से रूक्ष और स्निग्ध के कारण बने हुए हैं। कर्म का बंध हो वह आत्मा के राग-द्वेष के कारण नहीं, किंतु रूक्ष-स्निग्ध के कारण कर्म बँधते हैं। घड़ा कुम्हार के कारण नहीं, आटा पनचक्की के कारण नहीं। इसप्रकार शब्द, बंध, सूक्ष्म, स्थूल, संस्थान, भेद, अंधकार, छाया, उद्योत और आतप ऐसे दश स्कंध के भेद रूक्ष और स्निग्ध के कारण होते हैं। ये सब पुद्गल की पर्यायें हैं। इसप्रकार स्वतंत्रता बताकर निमित्ताधीन दृष्टि का निषेध कराया।

और फिर इसीप्रकार शास्त्रों में बताये हुए लक्षण के धारक आकुंचन-प्रसारण आदि को विभावव्यंजनपर्याय जानना। शरीर का संकुचित होना, दुबला होना, वह पुद्गल की अवस्था है। सांस ऊपर खींचने से शरीर संकुचित होता है, वह जीव के कारण तो नहीं है, किंतु श्वास के कारण भी नहीं है। धमनी जैसी जोर से श्वास चलना, पैर का अकड़ जाना—ये सब पुद्गल की पर्याय हैं, इसमें जीव का अधिकार नहीं है। दूध में से दही होना, तिल में से तेल निकलना, मौसमी में से रस निकलना, बिजली होना, धनुष में से बाण की गतिरूप अवस्था होना—ये सब पुद्गल की अवस्था हैं। बर्फ में से चूरा होना और फिर मिल जाना यह सब अन्य

के कारण नहीं, किंतु उसमें रूक्ष-स्निग्ध गुण के कारण पृथक् होना अथवा मिल जाना होता है। उसका उसरूप का विभावव्यंजनपर्याय का काल है। इसप्रकार जो स्वभाव से समझता है, उसको भेदज्ञान होता है।

इस जगत में जड़ चैतन्य अनादि-अनंत वस्तु हैं। जीव ज्ञानस्वभावी आदि और अंत रहित है। उसकी पर्याय में राग-द्वेषरूप संसार है, वह राग-द्वेष मूलवस्तु नहीं है। मूलवस्तु तो शुद्ध ही है, इसप्रकार भान होने से स्वपर-प्रकाशक ज्ञान खिलता है। उस ज्ञान में आत्मा स्वयं निश्चय-ज्ञेय है और व्यवहार अन्य ज्ञेयों को भी जानता है कि विकार में अन्य पदार्थ निमित्त हैं। और फिर दूसरे पुद्गल दिखते हैं, वे भी अजीव हैं; वे जीव नहीं हैं। जो नहीं है, वह नया नहीं होता और जो है वह सर्वथा नाश नहीं होता, उसका भवांतर (पर्यायान्तर) होता है। वस्तु कायम (स्थिर) रहकर परिवर्तित होती है।

यह अजीवाधिकार की १५वीं गाथा में पुद्गल के गुण बताये। पुद्गल के समूह को स्कंध कहते हैं और छोटे से छोटे पुद्गल के अणु को परमाणु कहते हैं। उन सबमें स्पर्श-रसादि गुण अनादि-अनंत हैं। द्रव्य, गुण कायम रहते हैं और अवस्था बदलती है।

१६वीं गाथा में पुद्गल की अवस्था दशप्रकार से होती है, ऐसा बताया। इसप्रकार पुद्गल में द्रव्य-गुण-पर्याय तीनों सिद्ध किये। शब्द, बंध आदि पर्याय होती है, वह पुद्गल की दशा है, वह उनसे होती है, जीव से नहीं होती। आत्मा को स्व-परप्रकाशक यथार्थ ज्ञान होने से जड़ की दशा का यथार्थ ख्याल आता है। यह भाषा बोली जाती है—वह आत्मा से तो बोली नहीं जाती है, लेकिन ओठ से भी नहीं बोली जाती है। ओठ आहारवर्गणा में से बने हुए हैं और शब्द भाषावर्गणा में से बने हुए हैं, दोनों वर्गणा भिन्न हैं। इसप्रकार भाषा का परिणमन होता है ऐसा ज्ञान जानता है। लेकिन ज्ञान के कारण भाषा नहीं है और भाषा के कारण ज्ञान नहीं है। भाषा, भाषा से है; ज्ञान, ज्ञान से है। इसप्रकार समझे बगैर धर्म नहीं होता है।

कर्म का बंध पुद्गल की विभावव्यंजनपर्याय है। और फिर आत्मा की पर्याय में होते दया-दानादि के परिणाम और काम-क्रोध के परिणाम आत्मा की मूलवस्तु नहीं है। यदि मूल में हो तो विकार कभी दूर न हो, इसलिए स्वभावदृष्टि के विकार को अभूतार्थ गिनकर पुद्गल की विकारी व्यंजनपर्याय कह दी है। संस्थान भेद वगैरह पुद्गल की अवस्था है। आटा पनचक्की से नहीं हुआ है। उस समय की भेदरूप अवस्था पुद्गल के कारण है।

अज्ञानी जीव संयोग को मानता है। संयोग के कारण पर में फेरफार नहीं होता। संयोग आत्मा में फेरफार नहीं करते, आत्मा संयोग में फेरफार (परिवर्तन) नहीं करती। अंधकार होता है, वह पुद्गल की पर्याय है। दीपक बुझ गया इसलिए अंधकार हुआ, ऐसा है ही नहीं। छाया वृक्ष से नहीं होती, वृक्ष स्थूल-स्थूल है, छाया स्थूल-सूक्ष्म है। अंगुली के धूप में रहने से छाया दिखती है, वह अंगुली के कारण नहीं है, उसीप्रकार जीव के कारण नहीं है। और फिर जड़ की अवस्था होती है, वह जीव के भाव से होती है—ऐसा नहीं है और जीव को भाव होता है—इसकारण वृक्ष में अवस्था होती है, ऐसा भी नहीं है। इसप्रकार उद्योत, आतप वगैरह दस भेद बताये। वे पुद्गल की विभाव्यंजनपर्यायें हैं।

जैसे आत्मा त्रिकाल वस्तु, उसके ज्ञानादि गुण त्रिकाली और उनकी ज्ञानादि पर्याय प्रत्येक समय बदलती है। वैसे पुद्गल द्रव्य के स्पर्शादिगुण त्रिकाली हैं और उसकी पर्याय प्रतिसमय पलटती है, उन पर्यायों के दश भेद बताये। द्रव्य, गुण कायम रहते हैं और पर्याय नयी-नयी होती हैं। शब्द, बन्ध, वगैरह दश प्रकार से स्कंधों की अवस्था होती है, उसकी खबर जड़ को नहीं है; किंतु ज्ञानी जानता है कि यह पुद्गल की अवस्था पुद्गल के कारण होती है और वह आत्मा के ज्ञान से जानी जाती है, वह व्यवहार है। आत्मा स्वयं को जानता है, वह निश्चय है। पुद्गल अपने कारण दश प्रकार के स्कंधरूप परिणमते हैं—यह उसका निश्चय है, आत्मा उसको जानता है-यह व्यवहार है, और स्वयं को जानता है, यह निश्चय है। इसप्रकार दो गाथा में पुद्गल का वर्णन संक्षेप में किया॥१६॥ [क्रमशः]

उज्जैन (म०प्र०) :- यहाँ पंडित कन्नुभाई दाहोद के पधारने से स्थानीय जैन समाज ने लाभ लिया। समयसार कलश टीका पर आपके दो प्रवचन हुए। **— प्रदीप झांझरी**

विदिशा (म०प्र०) :- स्थानीय तारण-तरण चैत्यालय में अ० भा० तारण-तरण युवा परीषद की विदिशा इकाई द्वारा दिनांक २२-५-७९ से दस दिवसीय शिक्षण-शिविर आयोजित किया गया। शिविर में युवकों एवं महिलाओं ने अपूर्व उत्साह से भाग लिया। **— विद्यानंद**

ज्ञान-गोष्ठी

सायंकालीन तत्त्वचर्चा के समय विभिन्न मुमुक्षुओं द्वारा पूज्य स्वामीजी से किये गये प्रश्न और स्वामीजी द्वारा दिये गये उत्तर।

प्रश्न- सभी गुणों का कार्य व्यवस्थित ही है तो फिर पुरुषार्थ करना भी रहता नहीं।

उत्तर- जिसको क्रमबद्धपर्याय की श्रद्धा में पुरुषार्थ भासित नहीं होता, उसको व्यवस्थितपना बैठा ही कहाँ है ?

प्रश्न- उसको व्यवस्थितपने का श्रद्धान नहीं हुआ तो उसका वैसा परिणमन भी तो व्यवस्थित ही है। वह व्यवस्थितपने का निर्णय नहीं कर सका, यह बात भी तो व्यवस्थित ही है। ऐसी दशा में निर्णय करने की कथा करना व्यर्थ ही है ?

उत्तर- उसका परिणमन व्यवस्थित ही है ऐसी उसे खबर कब है ? परिणमन व्यवस्थित है ऐसा सर्वज्ञ ने कहा है, परंतु उसे सर्वज्ञ का निर्णय ही कहाँ है ? प्रथम वह सर्वज्ञ का निर्णय तो करे ? पश्चात् उसे व्यवस्थित की खबर पड़े।

प्रश्न- व्यवस्थित परिणमनशील वस्तु है, इसप्रकार भगवान के कथन की श्रद्धा उसे है ?

उत्तर- नहीं, सर्वज्ञ भगवान का सच्चा निर्णय उसको कहाँ है ? पहले सर्वज्ञ का निश्चय हुए बिना व्यवस्थित का निर्णय कहाँ से आया ? मात्र ज्ञानी की बातें सुन-सुनकर वैसा-वैसा ही कहे तो इससे काम नहीं चलेगा, प्रथम सर्वज्ञ का निर्णय तो करो। द्रव्य का निर्णय किए बिना सर्वज्ञ का निर्णय वास्तव में हो सकता नहीं।

प्रश्न- केवली भगवान भूत-भविष्य की पर्यायों को द्रव्य में योग्यतारूप जानते हैं अथवा उन पर्यायों को वर्तमानवत् प्रत्यक्ष जानते हैं ?

उत्तर- प्रत्येक पदार्थ की भूत और भविष्यकाल की पर्यायें वर्तमान में अविद्यमान-अप्रकट होने पर भी सर्वज्ञ भगवान वर्तमानवत् प्रत्यक्ष जानते हैं। अनंत काल पहले हो चुकी भूतकाल की पर्यायें और अनंत काल पश्चात् होनेवाली भविष्य की पर्यायें अविद्यमान होने पर भी केवलज्ञान वर्तमान की तरह प्रत्यक्ष जानता है।

आहाहा! जो पर्यायें हो चुकीं और होनेवाली हैं ऐसी भूत-भविष्य की पर्यायों को प्रत्यक्ष जाने उस ज्ञान की दिव्यता का क्या कहना? केवली भगवान भूत-भविष्य की पर्यायों को द्रव्य में योग्यतारूप जानते हैं-ऐसा नहीं है; किंतु उन सभी पर्यायों को वर्तमानवत् प्रत्यक्ष जानते हैं; यही सर्वज्ञ के ज्ञान की दिव्यता है। भूत-भविष्य की अविद्यमान पर्यायें केवलज्ञान में विद्यमान ही हैं। ओहो! एकसमय की केवलज्ञान की पर्याय की ऐसी विस्मयता और आश्चर्यता है तो पूरे द्रव्य की सामर्थ्य कितनी विस्मयपूर्ण और आश्चर्यजनक होगी—उसका क्या कहना?

आहाहा! पर्याय का गुलाँट मारना यह कोई छोटी बात है? पर्याय तो अनादि से पर में ही जा रही है, उसको पलटकर अंदर में ले जाना है। अंतरंग तल में ले जाना महान पुरुषार्थ का कार्य है। परिणाम में अपरिणामी भगवान के दर्शन हो जायें यह पुरुषार्थ अपूर्व है।

प्रश्न- क्रमबद्ध के वास्तविक रहस्य को न समझनेवाला अज्ञानी, क्रमबद्ध के गीत गाते रहने पर भी भूल क्या करता है?

उत्तर- एक तो कहता है कि पर्याय को क्रमबद्ध स्वीकार करने से नियतवाद हो जाता है और दूसरा कहता है कि क्रमबद्ध में मेरे राग आना ही था वह आ गया। यह दोनों ही जीव भूल में हैं-मिथ्यादृष्टि हैं। दोनों ने मिथ्यात्व को पुष्ट करके निगोद का मार्ग अपनाया है। जिसकी दृष्टि में क्रमबद्ध यथार्थ रीति से बैठ गई है, उसकी दृष्टि पर्याय से हटकर आनंदमय आत्मा के ऊपर है, उसके क्रमबद्ध में राग आने पर भी वह उसका मात्र ज्ञाता ही है। ज्ञानानंदस्वभाव की दृष्टिपूर्वक जो राग आता है, वह राग दुःखरूप लगता है और ऐसे जीव ने ही क्रमबद्ध को यथार्थ माना है। वह जीव उस आनंद के साथ जब अपने रागरूप दुःख का मिलान करता है, तब उसे प्रतिभासित होता है कि अरे! यह राग दुःखरूप है। इसप्रकार क्रमबद्ध को माननेवाला आनंद की दृष्टिपूर्वक राग को दुःखरूप जानता है, उसके राग की मिठास उड़ गई है। जिसे राग में मिठास पड़ी हुई है, और पहले जो अज्ञान दशा में राग के टालने की चिंता थी वह भी क्रमबद्ध का पाठ पढ़कर मिट गयी है, उसके तो मिथ्यात्व की पुष्टि ही हुई है—मिथ्यात्व तीव्र ही हुआ है। राग

मेरा नहीं—ऐसा कहे और आनंदस्वरूप की दृष्टि न हो तो उसने मिथ्यात्व की वृद्धि ही की है। भाई! यह तो कच्चे पारा जैसा वीतराग का सूक्ष्म रहस्य है। अंतर में पचावे तो वीतरागता की पुष्टि हो, और उसका रहस्य न समझे तो उलटा मिथ्यात्व ही पुष्ट हो।

प्रश्न– जब आत्मा ज्ञायक है ही, तो फिर और करना क्या?

उत्तर– भाई! तू ज्ञायक ही है ऐसा निर्णय कर। ज्ञायक तो है, परंतु उस ज्ञायक का निर्णय नहीं है–वही करना है। पुरुषार्थ करूँ.... करूँ.... परंतु यह पुरुषार्थ तो द्रव्य में भरा है। बस, द्रव्य पर लक्ष जाते ही पुरुषार्थ प्रगट हो जाता है। जब द्रव्य के ऊपर लक्ष्य जाता है, तब सभी कुछ जैसा है–वैसा है–इसप्रकार मात्र जानता है। पर का तो कुछ पलटना है नहीं और स्व का भी कुछ पलटना नहीं। स्व का निर्णय करते ही दिशा पलट जाती है।

समाचार दर्शन

सोनगढ़ :- पूज्य स्वामीजी सुख-शांति में विराजमान हैं। प्रातः समयसार पर तथा मध्यांतर प्रवचनसार पर उनके मर्मस्पर्शी प्रवचन चल रहे हैं। प्रतिदिन रात्रि चर्चा भी चालू है।

शिक्षण तथा प्रवचनकार-प्रशिक्षण शिविर

प्रतिवर्ष की भाँति सोनगढ़ में दिनांक २१-७-७९ से ९-८-७९ तक पूज्य गुरुदेवश्री की छत्रछाया में शिक्षण शिविर तथा प्रवचनकार-प्रशिक्षण शिविर होने जा रहा है। इसी अवसर पर शिविर के अंतिम दिन ९ अगस्त ७९ को पूज्य बहिनश्री चंपाबेन की जन्म जयंती उत्साहपूर्वक मनायी जाएगी। जैसी की विगत अंक में सूचना दी गई थी, आनेवाले बंधु संबंधित पुस्तकें साथ लावें। क्रमबद्धपर्याय का विषय भी चलेगा, अतः फरवरी से जुलाई तक के आत्मधर्म के अंक भी साथ में लावें। **— व्यवस्थापक**

आध्यात्मिक शिक्षण-प्रशिक्षण शिविर सानंद संपन्न

अजमेर (राज०) :- पंडित टोडरमल स्मारक ट्रस्ट जयपुर द्वारा संचालित बीस दिवसीय तेरहवाँ शिक्षण-प्रशिक्षण शिविर अपनी अनेक विशेषताओं के साथ सानंद संपन्न

हुआ। इस शिविर में १४६ अध्यापक प्रशिक्षण में सम्मिलित हुए। उनमें से ५७ प्रशिक्षणार्थियों ने प्रथम श्रेणी में सफलता प्राप्त की। इसके साथ ही बाल शिक्षण की परीक्षा में ३३० बालक-बालिकायें, प्रौढ़ शिक्षण में लगभग ५०० तथा प्रवचन में २००० का जनसमुदाय उपस्थित रहता था। सभी ने तत्त्वलाभ लिया।

शिविर में पंडित बाबूभाई मेहता एवं डॉ० हुकमचंदजी भारिल्ल के प्रवचन, पंडित ज्ञानचंदजी विदिशा द्वारा ली गई प्रौढ़ कक्षाएँ तथा डॉ० भारिल्ल एवं पंडित रतनचंदजी विदिशा द्वारा ली गईं प्रशिक्षण कक्षाएँ प्रमुख आकर्षण का केन्द्र थीं। कुछ दिनों पंडित शशिभाई भावनगर, पंडित उत्तमचंदजी सिवनी, पंडित नेमीचंदजी पाटनी आगरा ने भी प्रौढ़ कक्षाएँ लीं। प्रतिदिन प्रवचनों के पश्चात् सांस्कृतिक कार्यक्रमों का आयोजन भी किया जाता था। प्रातः ५ से रात्रि १० तक लगभग १० घंटे नियमित कार्यक्रम चलते थे जिनमें समाज प्रत्येक कार्यक्रम में बड़े उत्साह से भाग लेती थी। दिन में दो बार बाल-शिक्षण की कक्षाऐं भी चलती थीं। अंत के दिनों में दीक्षांत समारोह, प्रशिक्षणार्थी सम्मेलन, कुन्दकुन्द कहान तीर्थ सुरक्षा ट्रस्ट का अधिवेशन, भा० वी० वि० पाठशाला समिति का अधिवेशन तथा अ० भा० जैन युवा फैडरेशन द्वारा युवा सम्मेलन आयोजित किये गये जिनके समाचार पृथक् से दिये गये हैं। सभी कार्यक्रम सानंद संपन्न हुए। इस अवसर पर ७० आत्मधर्म के ग्राहक बने तथा ८००० रुपये का साहित्य बिका।

शिविर में भाग लेने के लिये पश्चिम बंगाल, कर्नाटक, महाराष्ट्र, गुजरात, मध्यप्रदेश, उत्तरप्रदेश तथा राजस्थान आदि प्रांतों के लोग पधारे थे। प्रतिदिन लगभग ६०० व्यक्तियों का सामूहिक भोजन होता था। भोजन एवं आवास व्यवस्था उत्तम प्रकार से की गई थी। श्री पूनमचंदजी लुहाड़िया, श्री प्रेमचंदजी, श्री कैलाशचंदजी, श्री सुजानमलजी गदिया, श्री शिखरचंदजी सोनी, श्री माणकचंदजी गदिया, मुंशी ताराचंदजी, श्री ताराचंदजी बड़जात्या, पंडित हरकचंदजी, श्री पारसमलजी गदिया, श्री रतनलालजी गंगवाल तथा स्थानीय मुमुक्षु मंडल एवं युवा फैडरेशन के कार्यकर्ता चौबीस घंटे शिविर की सेवा में रहे।

शिविर में समाज के प्रतिष्ठित महानुभावों में दिगंबर जैन महासमिति के अध्यक्ष श्री साहू श्रेयांसप्रसादजी, महामंत्री श्री सुकुमारचंदजी, मंत्री श्री नेमीचंदजी, कार्यालय मंत्री श्री भगतरामजी, राजस्थान महासमिति के अध्यक्ष सेठ जम्बूकुमारजी, संरक्षक सर सेठ श्री भागचंदजी सोनी के अतिरिक्त राजस्थान के स्वास्थ्य मंत्री श्री त्रिलोकचंदजी जैन, राजस्थान

लोक सेवा आयोग के सदस्य श्री नाथूलालजी जैन, सेठ श्री पन्नालालजी गंगवाल व सेठ श्री रतनलालजी गंगवाल कलकत्ता, सेठ श्री राजेन्द्रकुमारजी व पंडित सेठ श्री जवाहरलालजी विदिशा, सेठ पदमचंदजी सर्राफ आगरा, श्री माणिकलाल आर० गाँधी व श्री बलुभाई बम्बई व श्री चिमनभाई बम्बई, श्री महावीरप्रसादजी हिसार, श्री नाथाभाई फतेपुर, श्री हीरालालजी भावनगर, श्री फूलचंदजी झांझरी उज्जैन, श्री सुरेन्द्रकुमारजी दिल्ली आदि पधारे थे।

दीक्षांत समारोह संपन्न

अजमेर :- श्री वीतराग-विज्ञान विद्यापीठ परीक्षाबोर्ड द्वारा आयोजित शिक्षण-प्रशिक्षण शिविर का दीक्षांत समारोह दिनांक २६-६-७९ को आनंद और उत्साह के वातावरण में संपन्न हुआ। समारोह की अध्यक्षता दिगंबर जैन महासमिति के महामंत्री श्री सुकुमारचंदजी जैन ने की। समारोह के मुख्य अतिथि प्रसिद्ध उद्योगपति श्री साहू श्रेयांसप्रसादजी थे।

सर्वप्रथम टोडरमल स्मारक ट्रस्ट के मंत्री श्री नेमीचंदजी पाटनी ने ट्रस्ट की गतिविधियों की जानकारी दी। तत्पश्चात् परीक्षाबोर्ड के रजिस्ट्रार डॉ० हुकमचंदजी भारिल्ल ने प्रशिक्षणार्थियों को संबोधित किया। ज्ञातव्य है कि ७ जून से २६ जून ७९ तक होनेवाले इस शिक्षण-प्रशिक्षण शिविर में १४६ प्रशिक्षार्थी अध्यापक-अध्यापिकाओं ने बालबोध प्रशिक्षण तथा प्रवेशिका प्रशिक्षण में भाग लिया तथा ३३० बालक-बालिकाओं ने बाल शिक्षण में भाग लिया। इनके अतिरिक्त अनेक प्रौढ़ शिक्षार्थी शिक्षण प्राप्त करते थे।

प्रवेशिका प्रशिक्षण में श्री जीवेंद्र जड़े बाहुबलीवालों को प्रथम, श्री शिखरचंद जैन गुरसौरा तथा राकेश जैन नागपुर वालों को द्वितीय एवं कु० अध्यात्मप्रभा भारिल्ल जयपुर को तृतीय स्थान मिला। बालबोध प्रशिक्षण में कु० इंद्राजैन थांदला ने प्रथम, श्रीमती मंजुला जैन कोटा ने द्वितीय एवं श्री सुरेन्द्रकुमार पिड़ावा एवं श्री अरहंतप्रकाश झांझरी उज्जैन ने तृतीय स्थान प्राप्त किया। सभी उत्तीर्ण परीक्षार्थियों को मुख्य अतिथि द्वारा प्रमाण-पत्र एवं जैन साहित्य से पुरस्कृत किया गया।

मुख्य अतिथि श्री साहूजी ने अपने भाषण में टोडरमल स्मारक ट्रस्ट द्वारा संचालित गतिविधियों की सराहना की और कहा—"मुझे इस बात की प्रसन्नता है कि जैन तत्त्वज्ञान के प्रचार के लिए स्थापित श्री वीतराग-विज्ञान विद्यापीठ परीक्षाबोर्ड की परीक्षा में १९७८ की परीक्षा में २० हजार छात्रों ने भाग लिया। इस विशाल संख्या से यह पता चलता है कि नई पीढ़ी

में तत्त्वज्ञान की रुचि एवं जिज्ञासा छिपी पड़ी है। टोडरमल स्मारक ट्रस्ट द्वारा छात्रों को सामान्य तत्त्वज्ञान देने की दिशा में जो धार्मिक पाठ्य पुस्तकें तैयार की गईं हैं, वे बहुत लोकप्रिय हुई हैं। इसीप्रकार साहित्य प्रकाशन, शोध एवं शिक्षण के क्षेत्र में भी ट्रस्ट द्वारा की जा रही सेवाऐं प्रशंसनीय हैं।''

अंत में समारोह के अध्यक्ष श्री सुकुमारचंदजी ने अगले वर्ष हस्तिनापुर में प्रशिक्षण शिविर लगाने की माँग करते हुए ट्रस्ट द्वारा किये जा रहे है कार्यों की सराहना की।

— अखिल बसंल

श्री कुंदकुंद कहान दि० जैन तीर्थ सुरक्षा ट्रस्ट का चतुर्थ अधिवेशन संपन्न

अजमेर :- श्री वीतराग-विज्ञान शिक्षण-प्रशिक्षण शिविर के अवसर पर श्री कुंदकुंद कहान दि० जैन तीर्थ सुरक्षा ट्रस्ट का चतुर्थ अधिवेशन श्री बाबूभाई मेहता की अध्यक्षता में सानंद संपन्न हुआ। अधिवेशन के उद्घाटक श्री साहू श्रेयांसप्रसादजी, मुख्य अतिथि श्री सेठ जम्बूकुमारजी जैन कोटा तथा विशेष अतिथि श्री सुकुमारचंदजी जैन थे। दिनांक २५-६-७९ को हुए इस अधिवेशन में लगभग दो हजार का जनसमुदाय उपस्थित था। सर्वप्रथम ट्रस्ट के अध्यक्ष श्री बाबूभाई मेहता ने कुंदकुंद कहान तीर्थ सुरक्षा ट्रस्ट की गतिविधियों की संक्षिप्त जानकारी दी। इसके पश्चात् उक्त ट्रस्ट द्वारा संचालित श्री टोडरमल दि० जैन सिद्धांत महाविद्यालय के प्राचार्य डॉ० हुकमचंदजी भारिल्ल ने वर्तमान समय में इस महाविद्यालय की उपयोगिता तथा उसकी दो वर्षों में हुई प्रगति पर प्रकाश डाला। ट्रस्ट द्वारा हो रहे कार्यों की सराहना करते हुए साहूजी ने कहा—''मेरी इच्छा है कि जीवनभर जिनवाणी एवं जितने भी तीर्थक्षेत्र हैं; जितना बन सके उनकी रक्षा करें, जीर्णोद्धार करें। श्री बाबूभाई इस ट्रस्ट के माध्यम से जो कार्य कर रहे हैं इसके लिये उन्हें मैं धन्यवाद देता हूँ।'' आपने तीर्थों की सुरक्षा के लिये अनेक महत्त्वपूर्ण सुझाव दिये। श्री नेमीचंदजी पाटनी ने शोध विभाग का परिचय दिया तथा ट्रस्ट की वार्षिक रिपोर्ट श्री माणिकलाल आर० गांधी, जो कि इस ट्रस्ट के मंत्री हैं, ने प्रस्तुत की। अंत में श्री जम्बूकुमारजी ने 'तीर्थों की सुरक्षा के लिए हम समाज में किस प्रकार जागृति उत्पन्न करें''—इस विषय पर अपने विचार व्यक्त किये।

श्री वीतराग-विज्ञान विद्यापीठ परीक्षा बोर्ड की मीटिंग सानंद संपन्न

अजमेर :- पंडित टोडरमल स्मारक ट्रस्ट, जयपुर द्वारा संचालित तेरहवें शिक्षण-

प्रशिक्षण शिविर के अवसर पर दिनांक २४ जून ७९ को दिन में ३.३० बजे सेठजी की कोठी, दौलतबाग, अजमेर में श्रीमान् पंडित बाबूभाई चुन्नीलालजी मेहता फतेपुर की अध्यक्षता में श्री वीतराग-विज्ञान विद्यापीठ परीक्षा बोर्ड की कार्यकारिणी समिति की मीटिंग हुई जिसमें सदस्यों के अतिरिक्त शिविर में पधारे अनेक गणमान्य महानुभाव उपस्थित थे। इस मीटिंग में कई महत्त्वपूर्ण निर्णय लिये गये।

महाराष्ट्र प्रांत में वीतराग-विज्ञान पाठशालाओं के बढ़ते हुए प्रचार को देखकर एवं मराठी भाषी छात्रों की पढ़ाई एवं परीक्षा की सुविधा के लिये परीक्षा बोर्ड की महाराष्ट्रीय शाखा स्थापित करने हेतु स्वीकृति दी गई। इसका कार्यालय जैन श्राविकाश्रम, कोल्हापुर में रखा गया है। मराठी प्रतिनिधि के रूप में श्रीमती डॉ० विजयलक्ष्मी पांगल एवं श्रीमती कंचनबैन कापसे को परीक्षाबोर्ड की केन्द्रीय कार्यकारिणी में सम्मिलित किया गया।

प्रांतीयता एवं सक्रियता के दृष्टिकोण से ३३ सदस्यीय नवीन कार्यकारिणी का गठन किया गया। इन्हीं सदस्यों में से श्रीमान् सेठ पूरणचंदजी गोदीका जयपुर को अध्यक्ष, श्रीमान नेमीचंदजी पाटनी आगरा को महामंत्री तथा श्रीमान् डॉ० हुकमचंदजी भारिल्ल जयपुर को मंत्री सर्वसम्मति से मनोनीत किया गया। मंत्री ही बोर्ड के रजिस्ट्रार का कार्य संभालेंगे।

शास्त्रीय परीक्षा का कोर्स निर्धारण करने के लिये एक समिति गठित की गई जो शीघ्र ही कोर्स तैयार करके अगली कार्यकारिणी में प्रस्तुत करेगी।

परीक्षाबोर्ड की लिखित परीक्षाओं में सर्वोच्च अंक प्राप्त करनेवाले प्रथम, द्वितीय, तृतीय पोजीशन लानेवाले छात्रों को पुरस्कार देना निश्चित हुआ। इसके लिये ५००) का वार्षिक बजट पास किया गया तथा चार सदस्यीय एक निर्णायक समिति गठित की गई जो पुरस्कार देने का आधार और योजना तैयार करेगी।

तमिल में श्री वीतराग-विज्ञान विद्यापीठ परीक्षा बोर्ड के पाठ्यक्रम के प्रचार एवं वीतराग-विज्ञान पाठशालाएँ प्रारंभ करने संबंधी कार्य श्री भरत चक्रवर्ती एवं शांतिलालजी भायाणी को सौंपा गया। इसीप्रकार कर्नाटक में श्री मनहरलाल पोपटलालजी सेठ तथा पंडित शिशुपालजी शास्त्री को सौंपा गया। इन्हें परीक्षा बोर्ड की केंद्रीय कार्यकारिणी का सदस्य मनोनीत किया गया।

— हेमचंद जैन

भारतवर्षीय वीतराग-विज्ञान पाठशाला समिति की मीटिंग सानंद संपन्न

अजमेर :- पंडित टोडरमल स्मारक ट्रस्ट द्वारा संचालित शिविर-शृंखला में तेरहवें शिक्षण-प्रशिक्षण शिविर के अवसर पर दिनांक २३ जून १९७९ को दोपहर में सेठजी की कोठी, दौलत बाग, अजमेर में श्रीमान् पंडित बाबूभाई चुन्नीलालजी मेहता, फतेपुर की अध्यक्षता में भारतवर्षीय वीतराग-विज्ञान पाठशाला समिति की साधारण सभा की मीटिंग हुई जिसमें समिति के सदस्यों के अलावा शिविर में पधारे अनेक गणमान्य व्यक्ति उपस्थित थे।

श्रीमान् पंडित रतनचंदजी भारिल्ल के मंगलाचरणोपरांत समिति के महामंत्री श्रीमान् नेमीचंदजी पाटनी ने संस्था की प्रगति की रिपोर्ट सुनाई तथा गत मीटिंग की कार्यवाही पढ़कर सुनाई जिसे उपस्थित सदस्यों ने अनुमोदित किया।

श्रीमान् पंडित हरकचंदजी सेठी, अजमेर ने गोधों के धड़े की पंचायती नसियां में एक वीतराग-विज्ञान पाठशाला प्रारंभ करके उसमें स्वयं पढ़ाने की घोषणा की और अजमेर तथा आस-पास चल रही पाठशालाओं के निरीक्षण और नयी पाठशालाएँ खुलाने हेतु ऑनरेरी रूप से कार्य करने की भावना व्यक्त की। और भी अनेक अध्यापकों ने पाठशालाएँ खोलने का संकल्प किया।

अजमेर शिविर के अवसर पर उपस्थित महानुभावों द्वारा स्वीकृत तथा पूर्व में स्वीकृत कुल १०२ पाठशालाओं का वर्ष १९७९-८० के लिये अनुदान की दातारों की ओर से स्वीकृतियाँ प्राप्त हुईं।

अजमेर नगर तथा उसके आसपास के नगरों में नवीन पाठशालाएँ खुलवाने तथा पूर्व में चल रही पाठशालाओं की देखरेख के लिये स्थानीय 'अजमेर क्षेत्रीय वीतराग-विज्ञान पाठशाला समिति' का गठन किया गया।

अभी तक वीतराग-विज्ञान पाठशालाओं को २०) माहवार अनुदान दिया जाता था, परंतु मंहगाई बढ़ जाने के कारण इसमें वृद्धि करके ३५) माहवार दिया जाना निश्चित किया गया। जिन वीतराग-विज्ञान पाठशालाओं की रिपोर्ट सर्वोत्तम रहेगी उन पाठशालाओं के अध्यापकों को पुरस्कृत करने संबंधी योजना को भी स्वीकृति प्रदान की गई। इसके लिये एक निर्णायक समिति गठित की गयी।

शिक्षण-शिविर संपन्न

भिलवड़ी (महा०) :- यहाँ दिनांक १-६-७९ से १०-६-७९ तक दस दिवसीय शिक्षण-शिविर सानंद संपन्न हुआ। डॉ० प्रियंकर यशवंत जैन के प्रवचन मोक्षमार्ग प्रकाशक, क्रमबद्धपर्याय तथा निमित्त-उपादान आदि विषयों पर चलते थे। ब्रह्मचारी यशपालजी ने रत्नकरण्ड श्रावकाचार एवं छहढाला की कक्षाऐं लीं तथा टोडरमल सिद्धांत महाविद्यालय के छात्र श्री महावीर पाटिल ने बच्चों की कक्षाऐं लीं। इस शिविर से लगभग २०० व्यक्तियों ने लाभ लिया। समाज में अच्छी धर्म प्रभावना हुई।

युवा सम्मेलन संपन्न

अजमेर :- वीतराग-विज्ञान शिक्षण-प्रशिक्षण शिविर के अवसर पर जैन समाज के व्यापक युवा संगठन अखिल भारतीय जैन युवा फैडरेशन द्वारा दिनांक २५-६-७९ को प्रातः ९ बजे युवा सम्मेलन का आयोजन श्री सुरेन्द्रकुमारजी जैन दिल्ली वालों की अध्यक्षता में किया गया। राजस्थान लोकसेवा आयोग के सदस्य श्री नाथूलालजी जैन सम्मेलन के मुख्य अतिथि थे। अन्य समागत समाजसेवी विद्वानों में श्री साहू श्रेयांसप्रसादजी, श्री नेमीचंदजी जैन (साहू जैन, दिल्ली), पंडित बाबूभाई मेहता, डॉ० हुकमचंदजी भारिल्ल, पंडित रतनचंदजी भारिल्ल, पंडित ज्ञानचंदजी, पंडित नेमीचंदजी पाटनी, श्री भगतरामजी आदि प्रमुख थे। मंगलाचरणोपरांत पुष्पहार द्वारा अतिथियों का स्वागत किया गया तथा सभी को फैडरेशन द्वारा प्रकाशित मासिक बुलेटिन का शिविर-अंक भेंट किया गया।

फैडरेशन के उद्देश्य तथा युवा सम्मेलन की उपयोगिता पर पंडित अभयकुमारजी द्वारा प्रकाश डालने के पश्चात् फैडरेशन के महामंत्री श्री अखिल बंसल ने संस्था की प्रगति तथा उसके द्वारा संचालित गतिविधियों की संक्षिप्त जानकारी दी। इस अवसर पर मुख्य अतिथि श्री नाथूलालजी ने कहा—''युवा वह है जिसके हृदय में कुछ करने की भावना है तथा जो अपने लक्ष्य की ओर अग्रसर है। जैनधर्म के जो मूलभूत सिद्धांत हैं, वे यदि युवकों में हैं तो समझिये कि हमारा धर्म सुरक्षित है। इस युवा सम्मेलन का आयोजन अद्भुत एवं विलक्षण है। ऐसे सम्मेलन होते रहना चाहिये।''

सम्मेलन के मुख्य वक्ता डॉ० हुकमचंदजी भारिल्ल ने फैडरेशन की प्रगति पर संतोष व्यक्त करते कहा—''अपने अल्पकाल में फैडरेशन ने जो प्रगति की है, वह युवा शक्ति का

सचेतन प्रदर्शन है। इसके कार्यों का मूल्यांकन करना युग का कार्य है। फैडरेशन की मुख्य विशेषता यह है कि यह तत्त्वज्ञान को साथ लेकर चला है जिसके पीछे आचरण दौड़ा-दौड़ा चला आता है—जो एक अच्छा लक्षण है।''

युवा फैडरेशन के कार्यकर्ताओं को अपना मार्गदर्शन एवं मंगल आशीर्वाद देते हुए पंडित बाबूभाई मेहता ने कहा—''युवा फैडरेशन के लोगों में सदाचार एवं तत्त्वप्रचार की रुचि है जो इसकी प्रगति का शुभ लक्षण है। विध्वंसात्मक कार्यों में शक्ति न लगाकर इन युवकों ने रचनात्मक कार्य हाथ में लिये हैं। अल्प अवधि में फैडरेशन के कार्यकर्ताओं ने जो महत्वपूर्ण कार्य किये हैं, उनके लिये मैं सबका अभिनंदन करता हूँ। अन्य युवा वक्ताओं ने भी अपने विचार प्रस्तुत किये। अंत में अध्यक्ष महोदय श्री सुरेन्द्रकुमार जैन ने फैडरेशन की निरंतर प्रगति की कामना करते हुए सभा समाप्ति की घोषणा की। — **अखिल बंसल**

टोडरमल महाविद्यालय के छात्रों को विशेष योग्यता प्राप्त

गत वर्ष की भाँति इस वर्ष भी उपाध्याय की परीक्षा में श्री दि० जैन आचार्य संस्कृत कालेज से परीक्षा में सम्मिलित श्री टोडरमल दि० जैन सि० महाविद्यालय के छात्र श्री शांतिकुमार पाटिल ने ७४ प्रतिशत अंक प्राप्त कर प्रथम तथा श्री नरेन्द्रकुमार जैन ने ६९.१ प्रतिशत अंक प्राप्त कर तृतीय स्थान प्राप्त किया है। परीक्षाफल शतप्रतिशत रहा। यह महाविद्यालय के प्राचार्य एवं उनके सहयोगियों के अथक परिश्रम का ही परिणाम है कि गत वर्ष भी इस महाविद्यालय के छात्रों ने बोर्ड में प्रथम, द्वितीय एवं तृतीय स्थान प्राप्त किया था। — अभयकुमार शास्त्री

खनियाधाना (म०प्र०) :- हमारे यहाँ समाज के आग्रह पर ग्रीष्मकालीन अवकाश में पंडित शांतिकुमारजी मौ वाले पधारे। उन्होंने तीनों समय करीब एक माह तक प्रवचन किये जिससे समाज में व्याप्त अनेक भ्रांतियों का निराकरण हुआ। समाज में विशेष जागृति हुई।

— **शिखरचंद पुजारी**

प्रशिक्षणार्थी-सम्मेलन सानंद संपन्न

अजमेर :- पंडित टोडरमल स्मारक ट्रस्ट जयपुर द्वारा संचालित शिविर शृंखला में अजमेर में संपन्न हुए तेरहवें शिक्षण-प्रशिक्षण शिविर में आगंतुक प्रशिक्षणार्थी बंधुओं का यह सम्मेलन दिनांक २५-६-७९ को श्री नेमीचंदजी जैन (साहू जैन, दिल्ली) की अध्यक्षता में

संपन्न हुआ। दिगंबर जैन समाज के नेता श्री साहू श्रेयांसप्रसादजी एवं श्री सुकुमारचंदजी मुख्य अतिथि के रूप में पधारे। इस सम्मेलन में प्रशिक्षणार्थी बंधुओं ने शिविर के माध्यम से जो ज्ञान प्राप्त किया, जो प्रेरणा पाई—उसे अपने शब्दों में व्यक्त किया। सम्मेलन का शुभारंभ पंडित अभयकुमारजी ने प्रशिक्षण शिविर का महत्त्व एवं परिचय देते हुए किया। प्रमुख प्रशिक्षक डॉ० हुकमचंदजी भारिल्ल ने प्रशिक्षणार्थी अध्यापकों को संबोधित करते हुए उन्हें गाँव-गाँव में पाठशालाऐं खोलने की प्रेरणा दी व समाज के झगड़ों से दूर रहने का सुझाव दिया। आपने कहा—''गाँव की पार्टीबंदी से आप सब अलग रहें तथा विवादास्पद बातों में न पड़ते हुए तत्त्व की बात ही समझाऐं। तत्त्वप्रचार के कार्य को आप फूलों की सेज मत समझिये, काँटों का ताज समझिये।''

प्रशिक्षणार्थी अध्यापकों में से सर्वप्रथम पूज्य समंतभद्रजी महाराज द्वारा भेजे बाहुबली आश्रम के अध्यापक श्री जीवेंद्रकुमार जड़े ने अपने विचार व्यक्त करते हुए कहा—''इस २० दिन के प्रशिक्षण में हमें किसप्रकार कक्षा में बालकों को पढ़ाना चाहिये यह प्रेक्टिकल बताया गया है। इस शिविर में डॉ० हुकमचंदजी भारिल्ल एवं पंडित रतनचंदजी ने जो दिया है, उसे शब्दों में व्यक्त करना असंभव है। मैं आपको यह विश्वास दिलाता हूँ कि मैं महाराष्ट्र में जाकर इस पद्धति को पाठशालाओं में अवश्य लागू करूँगा।'' मेडिकल तृतीय वर्ष के छात्र श्री सुभाष जैन, अजमेर—जिन्होंने स्वयं प्रशिक्षण प्राप्त किया था—अपने विचार इसप्रकार व्यक्त किये—''पहले हम जब स्तुतियाँ पढ़ते थे तो उनका अर्थ ही नहीं समझ पाते थे। वह सचमुच अपूर्व हैं जो कि हमें इस शिविर में मिला है। मैं यहाँ पर कम से कम दो पाठशालाऐं अवश्य चलाऊँगा।''

श्री शिखरचंदजी खरखरी द्वारा बंगाल से भेजे एवं साहूजी द्वारा संचालित हाईस्कूल के अध्यापक श्री अरुणकुमारजी सराक ने अपने उद्‌गार व्यक्त करते हुए कहा—''इस शिविर से मुझे जो शिक्षा प्राप्त हुई उसका पश्चिम बंगाल में उपयोग कर सकूँ इसके लिये इन भागों का बंगला भाषा में अनुवाद होना अनिवार्य है। हमें इस शिविर के माध्यम से तत्त्व में रुचि जागृत हुई है। मैं यहाँ से जाकर स्वयं इन पुस्तकों का बंगला भाषा में अनुवाद करूँगा तथा कम से कम दो पाठशालायें अवश्य चलाऊँगा।''

उनके द्वारा अपील किये जाने पर साहूजी ने उक्त स्कूल में यह पाठ्यक्रम लगाने की घोषणा की तथा टोडरमल स्मारक ट्रस्ट ने बंगला भाषा में पाठमालाऐं छपाने की भी घोषणा की।

पिड़ावा (राज०) से आये अध्यापक श्री सुरेन्द्रकुमार जैन ने कहा—''इन बीस दिनों में हम भौतिकवादिता से हटकर आध्यात्मिकता की ओर उन्मुख हुए हैं। अब आगे जहाँ भी शिविर लगेगा मैं अपने साथियों सहित अवश्य भाग लूँगा। मैं आजीवन कंदमूल का त्याग करता हूँ तथा घोषणा करता हूँ कि मैं जहाँ भी रहूँगा अपनी ओर से पाठशाला चलाऊँगा।''

दाहोद (गुज०) से आईं कु० बिन्दु कोठारी ने कहा—''यहाँ विद्वानों के प्रवचन सुनकर मुझे आत्महित की विशेष रुचि उत्पन्न हुई है। अब मैं यहाँ से जाकर नियमित स्वाध्याय करूँगी एवं वीतरागविज्ञान पाठशाला अवश्य चलाऊँगी। ब्यावर (राज०) से आए श्री कमलकुमारजी गंगवाल बोले ''जब हम यहाँ आये थे तो हमारा धार्मिक ज्ञान न के बराबर था परंतु आज मैं दावे से कह सकता हूँ कि मैंने यहाँ बहुत-कुछ सीखा है। मैं अपने गाँव जाकर एक वीतराग-विज्ञान पाठशाला अवश्य चलाऊँगा।

इसी प्रकार श्री हरकचंदजी गंगवाल नासिक (महा०), राजीवकुमार जैन अजमेर (राज०) एवं श्री कमलेशकुमार जैन मौ (म०प्र०) ने भी अपने-अपने हृदयोद्‌गार व्यक्त किये। अंत में सम्मेलन के अध्यक्ष श्री नेमीचंदजी जैन (साहू जैन, दिल्ली) ने अपने अध्यक्षीय भाषण में कहा—''ये प्रशिक्षणार्थी हमारे धर्मदूत हैं। एक दिन यह स्मारक अनेक टोडरमलों का निर्माण करेगा ऐसा मुझे विश्वास है।''

नैरोबी जानेवाले बंधुओं से निवेदन

नैरोबी (अफ्रीका) में हो रहे पंचकल्याणक प्रतिष्ठा महोत्सव में पधारनेवाले साधर्मी भाईयों से अनुरोध है कि वे हवाईजहाज के किराये हेतु ४२०० रुपये एवं अपना पासपोर्ट नीचे लिखे पते पर शीघ्र भिजवाने का कष्ट करें। जिन महानुभावों ने पंडित बाबूभाई मेहता आदि से इस संबंध में बात की हो वे भी उक्त राशि व पासपोर्ट हमें शीघ्र भेजें। उक्त राशि ३१ जुलाई तक हमारे पास पहुँच जाना चाहिए अन्यथा कन्सेशन का लाभ नहीं मिल सकेगा तथा विलंब होने की अवस्था में पूरा किराया जो कि लगभग ६५९० रुपये है लगेगा। अत: शीघ्रता करें।

— श्री बलुभाई शाह द्वारा श्री दि० जैन मुमुक्षु मंडल, १७३/१७५, मुम्बादेवी रोड, बम्बई-४०००००२

नए भवन का शिलान्यास

जयपुर :- श्री टोडरमल दि० जैन० सि० महाविद्यालय के नये भवन का शिलान्यास टोडरमल स्मारक भवन के पास के प्लाट में ही दि० १५ अगस्त ७९ को होने जा रहा है। इस अवसर पर माननीय विद्वद्वर्य अध्यात्मप्रवक्ता श्री लालचंदभाई एवं लोकप्रिय नेता एवं अध्यात्मप्रवक्ता पंडित बाबूभाई मेहता भी पधारेंगे। उनके प्रवचनों का आयोजन दिनांक १२ से २४ अगस्त तक टोडरमल स्मारक भवन एवं शहर के अन्य स्थानों पर किया जावेगा। बाहर से पधारनेवाले बंधुओं की आवास व भोजन की सुंदर व्यवस्था की जावेगी। इस अवसर पर मंडल विधान का आयोजन भी किया जाएगा। डॉ० हुकमचंदजी भारिल्ल द्वारा ली जानेवाली कक्षाओं का भी लाभ प्राप्त होगा। अतः सभी आत्मार्थी बंधुओं से लाभार्थ पधारने का सानुरोध निवेदन है।

कृपया पधारने की सूचना अवश्य दें।

— मंत्री

पंडित श्री लालचंदभाई मोदी एवं बाबूभाई मेहता के आध्यात्मिक प्रवचनों का आयोजन

जयपुर :— श्री टोडरमल दिगंबर जैन सिद्धांत महाविद्यालय के कार्यक्रमों के अंतर्गत दि० १२ अगस्त ७९ से २४ अगस्त ७९ तक टोडरमल स्मारक भवन में सुप्रसिद्ध अनुभवी विद्वान एवं आध्यात्मिक प्रवक्ता श्री लालचंदभाई अमरचंद मोदी बम्बई एवं बाबूभाई मेहता फतेपुर के आध्यात्मिक प्रवचनों का आयोजन किया गया है। डॉ० हुकमचंदजी भारिल्ल भी उन दिनों यहीं रहेंगे। उनके समागम का भी लाभ प्राप्त होगा।

बाहर से पधारनेवाले महानुभावों के लिए निःशुल्क आवास एवं सशुल्क भोजन की व्यवस्था है। वे हमें तत्काल सूचित करें जिससे उनके ठहरने आदि की समुचित व्यवस्था की जा सके। स्थानीय लोगों के लिए भी रात्रि विश्राम के लिये व्यवस्था की जावेगी, जिससे वे सायंकालीन एवं प्रातःकालीन दोनों प्रवचनों का लाभ उठा सकें।

— मंत्री, पंडित टोडरमल स्मारक ट्रस्ट

पाठकों के पत्र

अहमदाबाद (गुजरात) से श्री राजेशकुमारजी जैन लिखते हैं—

आत्मधर्म पढ़कर मन की भ्रांतियाँ दूर हो जाती हैं। डॉ० भारिल्लजी के क्रमबद्धपर्यायवाले संपादकीय ने हृदय को झकझोर दिया है।

टेपालपुर (म०प्र०) से श्री परमानंदजी मोदी लिखते हैं—

आत्मधर्म की बहुत प्रतीक्षा रहती है। स्वामीजी की ज्ञानगोष्ठी पढ़कर आत्मा में आनंद की हिलोरें आती हैं। क्रमबद्धपर्याय पढ़कर मेरा तो जीवन ही बदल गया है।

बदरवास (म०प्र०) से श्री शीतलप्रकाशजी गोयल लिखते हैं —

आत्मधर्म एक ज्ञानवर्द्धक पत्रिका है। इसे पढ़कर मुझे काफी शिक्षा मिली है।

गुना (म०प्र०) से श्रीमती विजय बहिन लिखती हैं—

'मेरे करने से होगा, मैं करूँ वैसा होगा, मैं चाहूँ वैसा होगा।' इस कर्तृत्व के झूठे अभिमान में जलते हुए लोगों के लिये आपके इस 'क्रमबद्धपर्याय' के प्रकाशन ने मेघ वर्षा जैसा कार्य किया है। जिससे कि जन्मान्तरों से चली आई तपन बुझी है, हृदय में शीतलता का अनुभव हो रहा है। हमें तो पर्याय की स्वतंत्रता का भान ही नहीं था। इस विषय पर खुलासा कर आपने स्वाध्याय प्रेमी भाई-बहनों पर अविस्मरणीय उपकार किया है। आपसे मेरी प्रार्थना है कि जब तक मेरी पर्याय भगवान अरहंत जैसी शुद्ध न हो जाए तब तक आप यही विषय देते रहिये। भूल भी यही है। यह विषय हमको जन्मांतरों से भूखों को मिष्टान्न की भाँति प्राप्त हुआ है। हम चिरऋणी रहेंगे।

भेंट में मिलने वाली पुस्तक प्राप्त करने का उपाय

* नीचे छपा भेंट-कूपन भरकर उसे निर्देशित स्थान से काटकर भेजें।
* कूपन के पीछे आपका पता चिपका है, कृपया उसे नष्ट न करें, क्योंकि उसी एड्रेस को देखकर भेंट की पुस्तक भेजी जावेगी। यह व्यवस्था इस दृष्टि से की है कि आपके नाम की पुस्तक कोई दूसरा व्यक्ति न ले सके।
* आप अपना कूपन अपने यहाँ के मुमुक्षु-मंडल के प्रमुख के पास भी जमा करा सकते हैं। हमारे पास मुमुक्षु-मंडलों के माध्यम से जितने भी कूपन प्राप्त होंगे हम उन सबकी पुस्तकें मुमुक्षु-मंडल को भेज देंगे। इसप्रकार आप अपनी पुस्तक आपके यहाँ के मुमुक्षु-मंडल के माध्यम से भी प्राप्त कर सकते हैं।
* यदि आपके यहाँ से कोई बंधु सोनगढ़ शिविर में या जयपुर पधार रहे हों तो आप उन्हें अपना कूपन भरकर दे सकते हैं। वे आपकी पुस्तक कूपन के माध्यम से सोनगढ़ या जयपुर कार्यालय से प्राप्त कर सकते हैं।
* मुमुक्षु-मंडल के प्रमुख जितने भी कूपन एकत्रित करें उनके नाम व ग्राहक नंबर नोट करके रिकार्ड में रख लें तथा पुस्तक देते समय प्राप्तकर्ता के हस्ताक्षर करा लें। सभी एकत्रित कूपन आत्मधर्म कार्यालय जयपुर को रजिस्टर्ड डाक से ही भेजें।
* आपका भेजा हुआ कूपन जयपुर कार्यालय को प्राप्त होने पर पुस्तक बुक पोस्ट द्वारा आपको भेजी जावेगी। यदि आप सुरक्षा की दृष्टि से पुस्तक रजिस्टर्ड डाक से मंगवाना चाहें तो कृपया रजिस्ट्री खर्च के २) रुपया मनिआर्डर द्वारा भेजें तथा मनिआर्डर पर अपना ग्राहक नंबर, पता तथा 'भेंट की पुस्तक के लिये' अवश्य लिखें।
* यह कूपन ३१ अक्टूबर, १९७९ तक ही स्वीकार किया जा सकेगा।

यहाँ से काटें

भेंट-कूपन

प्रिय संपादकजी,

मैं ..... आत्मधर्म हिंदी का नियमित ग्राहक हूँ। मेरा ग्राहक नंबर ..... है। कृपया भेंट में दी जानेवाली पुस्तक [मुमुक्षु मंडल या व्यक्ति का नाम भरें] ..... को दे दीजिए / मुझे डाक द्वारा पीछे चिपके पते पर भेज दीजिए।

हस्ताक्षर प्राप्तकर्ता ..... हस्ताक्षर ग्राहक .....

दिनांक .....

Registration. No. RJ-2712

हमारे यहाँ प्राप्त प्रकाशन *

मोक्षशास्त्र	१२-००
समयसार	१२-००
समयसार पद्यानुवाद	०-७०
समयसार कलश टीका	६-००
प्रवचनसार	१२-००
पंचास्तिकाय	७-५०
नियमसार	५-५०
नियमसार पद्यानुवाद	०-४०
अष्टपाहुड़	१०-००
समयसार नाटक	७-५०
समयसार प्रवचन भाग १	६-००
समयसार प्रवचन भाग २	प्रेस में
समयसार प्रवचन भाग ३	५-००
समयसार प्रवचन भाग ४	७-००
आत्मावलोकन	३-००
श्रावकधर्म प्रकाश	३-५०
द्रव्यसंग्रह	१-५०
लघु जैन सिद्धांत प्रवेशिका	०-४०
प्रवचन परमागम	२-५०
धर्म की क्रिया	२-००
जैन सिद्धांत प्रश्नोत्तर माला भाग १	१-५०
जैन सिद्धांत प्रश्नोत्तर माला भाग २	१-५०
जैन सिद्धांत प्रश्नोत्तर माला भाग ३	१-५०
तत्त्वज्ञान तरंगिणी	५-००
अलिंग-ग्रहण प्रवचन	१-६०
वीतराग-विज्ञान भाग ३ (छहढाला पर पूज्य स्वामीजी के प्रवचन)	१-००
बालपोथी भाग १	०-६०
बालपोथी भाग २	प्रेस में
ज्ञानस्वभाव ज्ञेयस्वभाव	४-००
बालबोध पाठमाला भाग १	०-५०
बालबोध पाठमाला भाग २	०-७०
बालबोध पाठमाला भाग ३	०-७०
वीतराग-विज्ञान पाठमालाल भाग १	०-७०
वीतराग-विज्ञान पाठमालाल भाग २	१-००
वीतराग-विज्ञान पाठमालाल भाग ३	१-००
तत्त्वज्ञान पाठमाला भाग १	१-२५
तत्त्वज्ञान पाठमाला भाग २	१-२५
जयपुर (खानियाँ) तत्त्वचर्चा भाग १ व २	३०-००
मोक्षमार्गप्रकाशक	प्रेस में

पंडित टोडरमल : व्यक्तित्व और कर्तृत्व		१०-००
तीर्थंकर महावीर और उनका सर्वोदय तीर्थ		५-००
" " (पॉकेट बुक साइज में हिन्दी में)		२-००
मैं कौन हूँ ?		१-००
तीर्थंकर भगवान महावीर		०-४०
वीतरागी व्यक्तित्व : भगवान महावीर		०-२५
अपने को पहचानिए		०-५०
अर्चना (पूजा संग्रह)		०-४०
मैं ज्ञानानंद स्वभावी हूँ (कैलेंडर)		०-५०
पंडित टोडरमल : जीवन और साहित्य		०-६५
कविवर बनारसीदास : जीवन और साहित्य		०-३०
सत्तास्वरूप		१-७०
सुंदरलेख बालबोध पाठमाला भाग १		प्रेस में
अनेकांत और स्याद्वाद		०-३५
युगपुरुष श्री कानजीस्वामी		१-००
वीतराग-विज्ञान प्रशिक्षण निर्देशिका		३-००
सत्य की खोज (भाग १)		२-००
आचार्य अमृतचंद्र और उनका पुरुषार्थसिद्धयुपाय	साधारण :	२-००
	सजिल्द :	३-००
धर्म के दशलक्षण	साधारण :	४-००
	सजिल्द :	५-००

Licence No.
P. P. 16-S.S.P. Jaipur City Dn.
Licensed to Post
Without Pre-Payment

If undelivered please return to :
प्रबन्ध-संपादक, आत्मधर्म
ए-४, टोडरमल स्मारक भवन, बापूनगर
जयपुर ३०२००४